लड़खड़ाती दुनिया

मूल लेखक

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

भूमिका-लेखक

आचार्य नरेन्द्रदेव

हिन्दी सम्पादक

सुधीन्द्र एम्. ए., साहित्य-रत्न

सर्वोदय साहित्य-माला : १०३वाँ ग्रन्थ

सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली

शाखाएँ

दिल्ली लखनऊ इन्दौर : वर्धा : कलकत्ता : इलाहाबाद

२६ जनवरी १९४१ . २०००
६ अप्रैल १९४२ ३०००

मूल्य
चौदह आना

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नयी दिल्ली

मुद्रक
देवीप्रसाद शर्मा
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नयी दिल्ली

दो शब्द

इस पुस्तक मे जो मज़मून जमा किये गये है उनको मैने पिछले तीन-चार बरस के अन्दर लिखा था। इस तेज़ी से बदलती हुई दुनिया मे वह काफी पुराने हो गये। लेकिन फिर भी आज के सवालो के समझने में शायद मदद करे। यह किताब पारसाल निकली थी जब मै जेल में था। अक्सर लोगो ने उसपर इनायत की नज़र से देखा और जितनी कापियाँ छपी थीं वह खतम हो गयी। इसलिए फिर से छपाने की आवश्यकता हुई।

इसके लेख चाहे पुराने हो या नये, किताब का नाम 'लड़खड़ाती दुनिया' बहुत मौजूँ और उचित है। अजीब दुनिया मे हम आज-कल रहते है जिसकी सब पुरानी बुनियाद ढीली पड गयी और फिर से कही जमती नही। कभी-न-कभी फिर जमेगी लेकिन वह कोई दूसरी दुनिया होगी क्योकि आजकल का ज़माना अपने आखिरी दिन देख रहा है। हमारे सामने बडे साम्राज्य गिरे और गिर रहे है। रोज़ तस्वीर बदलती है। लेकिन सवाल तो यह है कि हम भी इस तमाशे में हिस्सा ले रहे है या खाली दर्शक है? दर्शको की जगहें तो अब कही रही नही और जो बचना भी चाहते है वह भी कही जा नही सकते। बचे कहाँ और किसलिए? काम हमारा तो इस समय, इस जगह पर है।

आश्चर्य इस बात पर होता है कि किस तरह से इंग्लैण्ड और फ्रास ने अपनी जड खोदी। चीन में, स्पेन मे और म्यूनिक के समझौते से उन्होने अपने को बदनाम किया और कमज़ोर भी हुए। उस समय भी जो हम लोग काग्रेस की ओर से इन विदेशी प्रश्नो पर कहते थे वह ठीक निकला और अब इंग्लैण्डवाले पछताते हैं कि क्यो गलती की। पुरानी गलतियाँ तो कभी-कभी समझ मे आजाती है लेकिन फिर भी नयी

गलतियाँ होती जाती हैं। उनसे छुटकारा नहीं मिल सकता जबतक दिमाग न बदले।

हिन्दुस्तान इन पुरानी और नयी गलतियो का नमूना है। अंग्रेजी साम्राज्य तो यहाँ खतम हो रहा है—उसको तो खतम होना ही है—लेकिन खतम होते-होते हमको कितनी बीमारियाँ देकर जा रहा है। काफी मुसीबते हमको घेर रही है, काफी मुश्किल सवाल हमको चिमटे है। लेकिन यह तो इस लडखडाती दुनिया में होना ही था। तब हम शिकायत क्यो करे ? क्रान्ति और इन्किलाब के नारे हमने उठाये—अब वह क्राति हमारे पास आयी। कुछ रूप अच्छा है, कुछ बुरा, कुछ डरावना, जैसा कि क्रान्ति का हमेशा होता है। हम उसका स्वागत कैसे करे ? हिम्मत और वीरता और एकता से और अपने छोटे झगडों और बहसो को भूलकर हम अपना कद ऊँचा करके बड़े आदमी बने और फिर बडे सवालो को लेकर उनको हल करे।

इलाहाबाद,
८ मार्च, १९४२

पहले संस्करण की भूमिका

आज हम एक मोड पर खडे है। जिस रास्ते पर अबतक दुनिया चलती थी उसे छोडकर अब उसे दूसरी राह अख्तियार करनी पड़ेगी। पुराने आचार-विचार, पुरानी परम्पराएँ और सघटन टूटेगे और नये उनकी जगह लेगे। यह नयी राह राहत की होगी या आज से भी ज्यादा कठिन और मुसीबत की होगी, यह कहना मुश्किल है, किन्तु इसमे कुछ शक नही कि एक नये युग का प्रवर्तन होने जा रहा है। १९१४–१८ के रक्त-स्नान के बाद भी दुनिया न सँभली। आज वह पुराना इतिहास फिर से दुहराया जा रहा है। मानव-सभ्यता आज फिर खतरे में है। चारो ओर पाशविकता का राज्य है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे किसी बात का लिहाज और सकोच नही रह गया है और जीवन के ऊँचे आदर्श लुप्त-प्राय हो रहे है। अगर दुनिया बदलती है, तो हमारा देश भी इन बडी तब्दीलियो से अछूता न रह जायेगा। अगर दुनिया पर तबाही आयी, तो हम भी तबाही से बच न सकेगे और यदि दुनिया मे नया उजाला हुआ और एक ऐसा सामाजिक और आर्थिक सिलसिला कायम हुआ, जिससे मानवता की प्यास बुझनेवाली है, जिसके ज़रिये जनता की आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक ज़रूरते पूरी होनेवाली है, तो हम भी इस तरक्की में साझेदार होगे। अत दुनिया मे आज क्या हो रहा है, इसके प्रति हम उदासीन नही रह सकते। अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की धार से अलग रहकर न हम जिन्दा ही रह सकते है और न तरक्की ही कर सकते है, इसलिए हमको इस बात के विचारने की ज़रूरत है कि दुनिया पर यह सकट क्यो आया और इसका अन्त कैसे हो सकता है? समाजशास्त्र ही इस सवाल का सन्तोषप्रद जवाब दे सकता है। युद्ध इसीलिए होते है कि मुट्ठीभर धन-कुबेर समाज की सपत्ति पैदा करनेवाले समुदाय का आर्थिक शोषण करना चाहते है। उनको अपने मुनाफे से मतलब। वे अपने वर्ग के स्वार्थ को देश के स्वार्थ पर भी तरजीह देने को तैयार है, न उनकी कोई मातृभूमि है, न पितृभूमि। मुनाफा

कमाने के लिए वे राष्ट्रो को लडवा देगे और लाखो देशवासियो की हत्या का पाप अपने ऊपर लेने से न हिचकिचायेगे। मुनाफा उनके लिए सर्वोपरि है, वही उनका ईश्वर और धर्म है। यह अमिट सत्य है कि जब तक पूंजीवादी प्रथा कायम है तबतक ससार मे भीषण युद्ध होते रहेगे।

आज चारो ओर निराशा छायी हुई है, फैसिज्म और साम्राज्यवाद का बोलबाला है, तिसपर भी मानवता की अन्तर्वेदना और मार्मिक पीडा की कराह सुननेवालो को सुनाई पड ही जाती है। प्रगतिशील शक्तियाँ आज दबा दी गयी है लेकिन समय आने ही वह उभरेगी और इतिहास का बदला चुकायेगी। यदि हम अपने राष्ट्रीय जीवन को पुष्ट करना चाहते है, तो हमारी जगह इन्ही शक्तियो के साथ है। माना, आज ये शक्तियाँ क्षीण और दुर्बल है, लेकिन यह युगधर्म के अनुकूल है और इन्हीका भविष्य उज्ज्वल है। आज की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अध्ययन करके हमको निश्चय कर लेना है कि हमारे सच्चे सहयोगी कौन है?

'लडखडाती दुनिया' मे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है इस सग्रह से परिस्थिति को समझने और अपना मार्ग स्थिर करने मे काफी मदद मिलती है। प० जवाहरलाल नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक बडे विद्वान् है। हमारे राजनीतिज्ञो में इस विषय मे उनका मुकाबिला कोई नही कर सकता। उन्होने इस विषय का केवल अच्छा अध्ययन ही नही किया है, बल्कि विभिन्न देशो के प्रगतिशील व्यक्तियो और सस्थाओ के निकट सपर्क मे भी वह आये है। भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति हासिल करने मे उनका खासा हाथ है। हिन्दुस्तान के सवालो पर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना उन्हीसे हमने सीखा है, हमारे अन्य नेता इस ओर सदा उदासीन रहे और अन्तर्राष्ट्रीय बातो की चर्चा करने के लिए जवाहरलालजी का मजाक उडाते रहे। जवाहरलालजी ने ही सबसे पहले हमको आनेवाले युद्ध के खतरे से आगाह किया था। उस समय बहुत लोग यह समझते थे कि जवाहरलालजी का यह एक खब्त है। अबीसीनिया, स्पेन और

चीन के साथ जब उन्होंने सहानुभूति दिखायी और भारत की सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए खतरो की परवा न कर स्पेन और चीन की यात्रा की, तब भी लोग मजाक करने से बाज न रहे। यह कहा गया कि जिसके साथ जवाहरलालजी सहानुभूति दिखाते है वही हार जाता है। यह भी तोहमत लगायी गयी कि वह यथार्थवादी नही है, महज हवा मे उडते है। जीतती हुई ताकत का साथ तो सब देते है। सकट के आदर्श और सिद्धान्त को भुलाकर प्राय लोग अवसरवादिता की शरण लेते है, पर बिरले ही ऐसे धीरचित्त होते है, जो ऐसे कठिन समय मे भी आदर्शों को झुठलाते नही और अपने मार्ग से विचलित नही होते। ससार उन्ही की पूजा करता है, वही मानवता के सच्चे आधार है, लेकिन अगर हम यथार्थवाद की दृष्टि से भी देखे तो भी हमारी रक्षा इसी मे है कि हम उन्ही ताकतो का साथ दे, जो आज भले ही कमजोर हो, पर भविष्य जिनके साथ है।

हमारा मुल्क एक अरसे से साम्राज्यवाद का शिकार रहा है। हमारे देश के करोडो आदमी बेकार और भूखे है। यदि हमको आजाद होना है और देश की गरीबी को मिटाना है, तो यह काम उन ताकतों की मदद से नही हो सकता जो दुनिया का शोषण करती है और सबको गुलाम बनाती फिरती है। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तान जापान की मदद से आजाद नही हो सकता। जापान एक फौजी और फासिस्ट ताकत है। वह पूर्वी एशिया में अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। यदि यह उद्देश्य सफल हुआ, तो हिन्दुस्तान भी एक दिन उसका शिकार बनेगा। आज अगर चीन जापान के आक्रमण को न रोके और जापान से सुलह करले, तो पूर्वीय एशिया के लिए एक बडा सकट खडा होजाये। क्या हम नही देखते कि चीन जापान का मुकाबला कर एक ऐसा मजबूत बाँध तैयार किये हुए है जो जापानी फैसिज्म को एशिया मे बढने से रोकता है? चीन इस तरह भारत तथा पूर्वी एशिया के अन्य देशों के लिए भी लड रहा है, इस कारण भी हमारा कर्तव्य है कि चीन से हम अपना नाता जोडे। जवाहरलालजी चीन को भारत के बहुत निकट

ले आये हैं। यूरोप की घटनाओ का प्रभाव हमपर पडेगा ही, पर उससे भी कही अधिक हमारे पडोसी राष्ट्रो की हलचल का प्रभाव हमपर पडनेवाला है। यदि हम अपने पडोसी राष्ट्रो के साथ सद्भाव और मैत्री कायम कर सके तो, हम अपने चारो ओर ऐसी अभेद्य दीवारे खडी कर लेगे जो हिमालय की तरह सन्तरी का काम देगी। जहाँ यूरोप के राष्ट्र अपने अस्त्र-शस्त्र के भरोसे अपनी रक्षा मे तत्पर है, वहाँ नि शस्त्र भारत अपनी सहृदयता और आदर्शवादिता के भरोसे अपनी और अपने पडोसियो की मिल-जुलकर रक्षा करेगा। आनेवाले दिन हम सबके लिए बडे सकट के है, केवल परस्पर सहयोग और सद्भाव द्वारा हम विस्तार पा सकेगे। चीन की मैत्री हमारे बडे काम की चीज़ होगी। क्या अच्छा होता यदि जवाहरलालजी स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रो मे भी एक चक्कर लगाकर इस शुभ काम को पूरा कर देते, उनके काम का महत्त्व आनेवाले युग में ही ठीक-ठीक आँका जा सकेगा।

स्पेन की यात्रा करके जनक्रान्ति का जो अनुभव उन्होने प्राप्त किया है, वह वक्त आने पर हमारे काम आयेगा। बार्सीलोना और केटोलोनिया के निहत्थे और रणशिक्षा से वचित मज़दूरो ने अपने प्राणो को होमकर दुश्मन की मशीनगनो को बेकार करके जिस असाधारण शौर्य का परिचय दिया था, वह पद-दलित जनता के लिए एक गर्व की वस्तु है। क्या यह उन आलोचको को मुँहतोड जवाब नही है, जो बराबर हमको याद दिलाया करते है कि अपढ जनता से कुछ हो नही सकता ?

जवाहरलालजी के इन लेखो से पाठकों को वस्तुस्थिति का प्रामाणिक ज्ञान ही न होगा, वल्कि वे भविष्य का मार्ग भी स्थिर कर सकेगे। उनकी अधिकारयुक्त वाणी रहस्य का उद्घाटन करके पथ-प्रदर्शक का काम करती है।

फ़ैज़ाबाद,
२९-१२-४०

नरेन्द्रदेव

सूची

चीन

स्पेन

: १ :

शान्ति और साम्राज्य

यह परिषद् 'इण्डिया लीग' और 'लण्डन फेडरेशन ऑव पीस कौन्सिल्स' संस्थाओ की ओर से शान्ति और साम्राज्य की समस्याओ पर विचार करने के लिए बुलायी गयी है। शान्ति और साम्राज्य !— मूल मे ही एक दूसरे के विरोधी शब्दो और विचारो का यह अनोखा मेल है, लेकिन मेरी समझ में उनको इस तरीके से एक साथ लाने और परिषद् की आयोजना करने की सूझ आनददायक रही। मै समझता हूँ जबतक हम अपने साम्राज्यवादी विचारो को दूर न कर देंगे, तबतक हम इस दुनिया मे 'शान्ति' नही पा सकेंगे। इसलिए शान्ति की समस्या का सार साम्राज्य की समस्या ही है।

जबतक साम्राज्य फूलते-फलते रहते है, तबतक ऐसे अर्से आ सकते है जबकि राष्ट्रो के बीच खुली लड़ाई न हो रही हो, लेकिन तब भी शाति नही होती, क्योकि तब सघर्ष और युद्ध की तैयारियाँ चलती रहती है। साम्राज्यवादी विरोधी राष्ट्रो मे, शासन करनेवाली सत्ता और शासित जनता में और वर्गो में सघर्ष तो रहता ही है क्योकि साम्राज्यवादी राष्ट्र का आधार ही शासित जनता का दमन और शोषण है इसलिए लाजमी है कि उसका विरोध भी होगा और उस शासन को फेक देने की कोशिशे की जायेगी। इस बुनियाद पर कोई शाति कायम नहीं की जा सकती।

आप और मै फासिस्ट हमलो के इन दिनो में फासिस्ट आतक को रोकने के लिए अक्सर कुछ न कुछ करते रहते है, लेकिन हमेशा साम्राज्य-वादी विचारो को भी रोकने के लिए ऐसा नही करते। बहुत-से लोग

दोनो मे फर्क ढूँढने की कोशिश किया करते है । वे साम्राज्यवादी विचार को बहुत अच्छा तो नही समझते; लेकिन समझते है कि शायद हम एक अर्से तक उसे निभा सके, हालाँकि फासिज्म से हमारा काम चलना मुमकिन नही है । मै चाहता हूँ कि आप इस परिषद् मे इसपर विचार करेगे और इस बात का पता लगाने की कोशिश करेगे कि आखिर हम किस हदतक इन दोनो मे फर्क समझे ?

हो सकता है कि चूँकि मै ऐसे देश से आया हूँ जो साम्राज्यवाद के अधीन है, इसलिए साम्राज्य के इस सवाल को बहुत ज्यादा महत्त्व दे रहा हूँ । लेकिन इस बात को जाने दीजिए तो भी मुझे ऐसा लगता है कि आप फासिज्म और 'साम्राज्यवाद' नाम की दोनो धारणाओ मे फर्क नही पा सकते और फासिज्म असल मे साम्राज्यवाद का ही तीव्र रूप है। इसलिए अगर आप फासिज्म से लड़ना चाहते है तो आपका साम्राज्य-वाद से लडना लाज़मी है ।

उस वक्त जबकि फासिस्ट प्रतिक्रियावादी फौजे लडने के लिए खड़ी होकर दुनिया को आतकित करती हो, और दूसरी साम्राज्यवादी सरकारें अक्सर उनको बढावा और मदद देती हो, तब हमे बड़ी विकट और जटिल परिस्थिति का सामना करना पडता है । आज, जबकि दुनिया की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ इकट्ठी होकर सगठित हो रही है, उनका सामना करने और उन्हे रोकने के लिए हमें भी अपने तुच्छ भेद-भावो को भूलकर सगठित हो जाना होगा ।

हम देखते है कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों मे और दूसरे देशो में फासिज्म फैल रहा है और उसके पक्ष में सब तरह का प्रोपेगेण्डा भी चल रहा है। शायद आप सब जानते होगे कि आज दक्षिणी अमरीका में फासिस्ट राष्ट्रो की ओर से बडे ज़ोरो का प्रचार हो रहा है। हम यह भी देख

रहे है कि साम्राज्यवादी देश धीरे-धीरे करके फासिज्म की ओर बढते जा रहे है, गो कभी-कभी वे अपने यहाँ प्रजातन्त्र की बातें कर लिया करते है। वे तो यह करेगे ही क्योकि साम्राज्यवाद ही उनकी नीव और पार्श्वभूमि है इस कारण आखिरकार वे फासिज्म को रोक नही सकते। हाँ, वे उस पार्श्वभूमि को ही छोड दे तो बात दूसरी है।

प्रतिक्रियावादी शक्तियो का आज एक प्रकार का सगठन हो रहा है। हम उसका मुकावला कैसे करे ? प्रतिक्राति के विरुद्ध प्रगति की शक्तियाँ जुटाकर। और अगर उन्ही लोगो की, जो कि प्रगतिशील शक्तियों के प्रतिनिधि है, विखरने की और छोटी-छोटी वातों पर बहुत ज्यादा बहस करके बडे प्रश्नो को खतरे मे डालने की आदत हो जाये तो वे फासिस्ट और साम्राज्यवादी आतक को रोकने में कभी सफल नही हो सकेगे। किसी भी वक्त यह आपके सोचने-विचारने की बात होगी कि हमे सगठित रहना है। लेकिन हमारे सामने जो तरह-तरह की कठि-नाइयाँ आ गयी है, उनके कारण तो यह बहुत ही जरूरी बात हो गयी है।

अब तो एक सयुक्त मोर्चा ही—और राष्ट्रीय सयुक्त मोर्चा नही बल्कि विश्वव्यापी सयुक्त मोर्चा ही—हमारे मकसद को पूरा कर सकता है। और जिन सकटो मे से हम निकल चुके है, आज हमे सबसे अधिक आशा दिलानेवाले लक्षण वे ही है जो ससार भर की प्रगति और शान्ति की शक्तियो के सगठन की ओर इशारा करते है।

आपको याद होगा कि चीन के अन्दरूनी सघर्ष ने ही उस राष्ट्र को कमज़ोर बना दिया था, लेकिन पिछले साल जब जापान का हमला हुआ तो हमने देखा कि जो लोग आपस मे बुरी तरह लड रहे थे और एक दूसरे को मिटा रहे थे, जिन्होने एक-दूसरे के खिलाफ बहुत ज्यादा कटुता पैदा कर ली थी, वे ही इतने महान् हो गये कि उन्होने संकट

को देखा, और उससे लडने के लिए सगठित हुए । आज हम सालभर से देखते आ रहे है कि चीन के सगठित लोग हमले के खिलाफ लड रहे है । इसी तरह, आप देखेगे कि कि हरेक देश मे एकता लाने के थोडे या बहुत सफल प्रयत्न हो रहे है और ससार भर के भिन्न-भिन्न राष्ट्रो के ये सगठित दल अन्तर्राष्ट्रीय सगठन बनाना चाहते है ।

यूरोप और पश्चिम मे, जहाँ कि प्रगतिशील दलो का इतिहास ज़रा लम्बा है और भूमिका थोडी भिन्न है, आपको फायदे भी है और नुक्सान भी है । मगर एशिया में, जहाँ ऐसे दल अभी बने ही है, यह प्रश्न अक्सर राष्ट्रीय प्रश्न से छिपा रहता है और किसी के लिए अन्तर्राष्ट्रीयता की भाषा मे इस प्रश्न को सोचना उतना आसान नही है क्योकि हमे सबसे पहले राष्ट्रीय राजनीति की भावना के अनुसार सोचना पडता है ।

यह सब होते हुए भी, आधुनिक परिवर्तनो ने और खासतौर से अबीसीनिया, स्पेन और चीन मे हुई घटनाओ ने अब लोगो को अन्तर्राष्ट्रीयता की भाषा मे सोचने को मजबूर कर दिया है । एशिया के इन कुछ देशो में हम बहुत बडा परिवर्तन हुआ पाते है, कारण कि अपने सघर्षो मे लगे रहने पर भी, हम दुनिया के दूसरे हिस्सो मे होनेवाले सामाजिक सघर्षो पर अधिकाधिक सोचने लगे और अनुभव करने लगे कि उनका तमाम दुनिया पर असर पडा है इसलिए हमपर भी पडा है ।

अगर हम फासिस्टो के आतक को सफलतापूर्वक रोकना चाहते है तो हमको साम्राज्यवाद का भी उतना ही विरोध करना चाहिए, नही तो हम कामयाब न होगे । ब्रितानिया की विदेशी नीति इसी करुणाजनक असफलता का नमूना है, क्योकि जबतक वह साम्राज्यवाद की बात सोचा-करेगी तबतक न तो वह फासिस्ट हमलो का मुकाबला

कर सकती है और न दुनिया की प्रगतिशील शक्तियो से अपना सम्बन्ध जोड सकती है। और इस प्रकार असफल होकर वह उसी अपनी सल्तनत को नष्ट करने मे मदद भी कर रही है, जिसे वह कायम रखना चाहती है। हमारे सामने यह इस बात का जीता-जागता नमूना है कि किस प्रकार साम्राज्यवाद और फासिज्म की बुनियाद मे गठजोडी है और साम्राज्यवाद एक दूसरे से विरोधी बाते पैदा करता है।

अगर हमारा यह विश्वास है—मै मानता हूँ हममें से अधिकाश का है—कि साम्राज्यवाद का फासिज्म से नाता है और दोनों के दोनों शान्ति के दुश्मन है तो हमे दोनो को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए और दोनो में फर्क ढूंढने की कोशिश छोड देनी चाहिए। इसलिए हमे खुद साम्राज्यवाद को ही उखाडने की कोशिश करनी है और दुनिया भर के पराधीन लोगो के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता पाने में जुट जाना है।

अब, हमसे अक्सर कहा जाता है कि साम्राज्यवादी धारणा के बदले हमें राष्ट्रो के कॉमनवेल्थ की धारणा बनानी चाहिए। यह शब्द तो हरेक को अच्छा लगता है, क्योकि हम सब चाहते है कि इस दुनिया मे राष्ट्रों का एक कॉमनवेल्थ बने। लेकिन अगर हम सोच ले कि साम्राज्य ही धीरे-धीरे करके कॉमनवेल्थ की शक्ल में बदल जायेगा और अर्थनीतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से उसका अपना ढाँचा करीब-करीब वैसा ही बना रहे, तो मुझे ऐसा जान पडता है कि हम अपने आपको बडे भारी धोखे मे रख रहे है। ऐसा कोई सच्चा कॉमनवेल्थ हो ही नही सकता कि जो साम्राज्य से पैदा हुआ हो। उसके जन्मदेनेवाले तो दूसरे ही होगे।

ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में बहुतेरे देश है जो करीब-करीब स्वतन्त्र है। लेकिन हम यह न भूल जायें कि ब्रिटिश साम्राज्य में एक विस्तृत भू-खण्ड

और एक वडी भारी आवादी है जो विल्कुल पराधीन है और अगर आप यह सोचे कि वह पराधीन जनता धीरे-धीरे उस कॉमनवेल्थ मे वरावरी की साझेदार वननेवाली है तो आपको वड़ी भारी मुश्किले मालूम होगी। आपको पता लगेगा कि यदि किसी तरह राजनीतिक उपायो से वह प्रक्रिया हो भी गयी तो ऐसे कई आर्थिक वन्धन रहेगे जो एक स्वतत्र कॉमनवेल्थ से मेल नही खाते और उनसे उन पराधीन लोगों को कोई सच्ची स्वतत्रता नही मिल सकेगी, यहाँतक कि यदि वे अपनी आर्थिक व्यवस्था वदलना चाहेगे तो उसमें रुकावट आयेगी और वे अपनी सामाजिक समस्याएँ नही सुलझा पायेगे।

मै सोचता हूँ, हममें से हरेक राष्ट्रो के सच्चे कॉमनवेल्थ के पक्ष मे होगा। लेकिन हम उसे कुछ ही देशों और राष्ट्रो तक सीमित कर देना क्यों चाहे? इसका मतलव यह हुआ कि आप एक वर्ग का विरोध करने के लिए दूसरा वर्ग वना रहे है। दूसरे शव्दो में आप साम्राज्य की धारणा पर नयी रचना कर रहे है और एक साम्राज्य की टक्कर दूसरे साम्राज्य से होती है। इससे एक समूह के भीतर लडाई होने का खतरा भले ही कम हो जाये, समूहों के वीच मे लडाई का खतरा तो वढ ही जायेगा।

इसलिए अगर हम किसी सच्चे कॉमनवेल्थ की वात सोच रहे है तो फिर यह जरूरी हो जाता है कि हम साम्राज्यवाद के विचारो को छोड़ दें और नये आधार पर नयी रचना करे—वह आधार हो सव लोगो के लिए पूरी स्वतन्त्रता का। ऐसी व्यवस्था के लिए हरेक राष्ट्र को दूसरो के साथ-साथ प्रभुत्व (सत्ता) के कुछ चिह्न छोडने होगे। इसी वुनियाद पर हम सामूहिक सुरक्षितता और शाति स्थापित कर सकते है।

आज एशिया में, अफ्रीका में और दूसरी जगह ऐसी एक विशाल जनसख्या है जो पराधीन है और जवतक हम उस पराधीनता को दूर न

कर दे और साम्राज्यवादी विचार नष्ट न हो जाये, तबतक हमे मालूम होगा कि यही शाति की बगल मे चुभनेवाला एक काँटा है।

अफ्रीका और दूसरे देशो में मैण्डेट (शासनादेश) देने की प्रथा, मेरी समझ में, बडी खतरनाक बात है, क्योकि वह एक बुरी चीज को अच्छे नाम में छिपाकर रखती है। साररूप मे वह दूसरे भेष में साम्राज्यवादी प्रथा ही है। एक शख्स को दूसरे का ट्रस्टी बनाना और उसे इससे नफा उठाने देना हमेशा खतरनाक है। यह हो सकता है कि कुछ देशो मे जहाँ आप पूरी आज़ादी कायम करना चाहते है, वहाँ उसी प्रकार की सरकार उतनी जल्दी कायम न हो सके जितनी जल्दी दूसरी जगह हो सकती हो, लेकिन चलना आपको यही आधार लेकर है कि हरेक पराधीन जनता को पूर्ण स्वतत्रता मिले और फिर अगर ज़रूरत हो तो व्यावहारिक रूप से आगे बढा जाये। हालाँकि व्यक्तिगत रूप से मुझे मदद पहुँचाने के इन वायदों में भरोसा नही है, मगर कभी-कभी वे ज़रूरी हो सकती है। लेकिन मै नही समझता कि आप इस शासनादेश प्रथा में से बाहर निकलने का रास्ता पा सकते है; क्योकि वह उसी बुनियाद पर कायम है जिसपर कि खुद साम्राज्यवाद।

मैंने आपको बताया कि इस संकट की वजह आज से भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की जनता मे सगठन और अतर्राष्ट्रीय भाईचारे और बन्धुत्व की भावना बढ रही है। जो राष्ट्र मित्र बनकर रहना चाहते है उन्हे निकाल देने से इस अतर्राष्ट्रीय बन्धु-भाव की प्रगति जोखम में पड़ जायेगी। हिन्दुस्तान के निवासी पिछले कई युगों से चीन-निवासियों के साथ अत्यन्त मित्रता का व्यवहार करते आ रहे है। उनमे कभी कोई झगडा नही हुआ। हमारे जिन मित्र नें चीन के निवासियो की ओर से बधाइयाँ प्रकट की है, मै उनकी भूल को दुरुस्त करने की गुस्ताखी कर रहा हूँ। उन्होंने कहा

कि चीनी यात्री हिन्दुस्तान मे १२वी सदी मे आये। वे १००० वर्ष पिछड गये है। वे उससे भी १००० वर्ष पहले हिन्दुस्तान में आये थे और उनकी यात्राओ के ग्रन्थो मे इसका वर्णन है। तो दोनो का सम्पर्क बहुत पुराना है, लेकिन इसके अलावा भी, हाल के इस विश्व और चीन के सकट ने हमे एक-दूसरे के बहुत अधिक निकट ला दिया है। अब तो हमे सगठित होकर रहना चाहिए, ससार की शाति और प्रगति के लिए आपस में सहयोग रखना चाहिए। अगर हम चाहे तो ऐसा क्यो नही कर सकते ?

तो, अगर आप आज के ससार पर निगाह डाले तो आपको ऐसे देश मिलेगे जो किसी न किसी कारण से एक विश्व-व्यवस्थामे शामिल नही होगे, लेकिन यह तो कोई ऐसा कारण नही कि हम ऐसी विश्व-व्यवस्था बनाने के लिए जुट न पडे और उसे कुछ खास-खास राष्ट्रो तक ही सीमित करले।

इसलिए, राष्ट्रो की एक मर्यादित कॉमनवेल्थ की धारणा का विरोध होना चाहिए और अधिक व्यापक कॉमनवेल्थ की धारणा बननी चाहिए। सिर्फ तभी हम सामूहिक सुरक्षितता का अपना लक्ष्य सचमुच पा सकते है। हम सामूहिक सुरक्षितता चाहते है, लेकिन मै अपना मतलब बिल्कुल साफ कर देना चाहता हूँ मेरा मतलब वह नही है कि जो श्री नेविल चेम्बरलेन ने उसके साथ जोड रखा है। सामूहिक सुरक्षितता की मेरी धारणा, शुरू मे उस परिस्थिति को वैसा ही बनाये रखना नहीं है कि जो खुद अन्याय पर कायम है। इस तरह सुरक्षितता नही हो सकती। इसका जरूरी मतलब यह हुआ कि साम्राज्यवाद और फासिज्म को हट जाना होगा।

आज दुनिया बडी विकट हालत में है। हम देखते है कि कई लोग दीखने मे तो बुद्धिमान है, लेकिन वे एक दूसरे की विरोधी नीति पर चल रहे है और दुनिया के गडबडझाले को और भी बढाते चले जा रहे है। इस देश में, ब्रिटेन मे, हमने देखा कि विदेशी नीति ने एक असाधारण रूप

ले लिया है। आपमे से अधिकतर इसके खिलाफ है। फिर भी, यह वडी अजीव वात है कि ऐसी वात हो, और वाहर रहनेवाले के लिए तो इसको समझना वहुत ही ज्यादा मुश्किल है। इसे किसी भी दृष्टिकोण से समझना मुश्किल है। आज हम ब्रिटेन में ऐसी सरकार देखते है जो गालिवन् ब्रिटिश साम्राज्य को वनाये रखना चाहती है मगर काम ऐसे-ऐसे करती है कि जो साम्राज्य के हितो के खिलाफ जाते है।

मेरी दिलचस्पी उस साम्राज्य को वनाये रखने मे नही है वल्कि उस साम्राज्य का एक मुनासिव ढग से खात्मा करने मे है। आम जनता शायद इस नीति को पसन्द करे क्योकि वह साम्राज्यवाद और फ़ासिज्म के वारे मे अभी उलझन मे है। वह इस वात का जाहिर सवूत है कि जव साम्राज्यवाद एक कोने मे घुसा दिया जाता है तो वह फासिज्म के साथ जा खडा होता है। दोनों को आप अलग नही रख सकते। आज जवकि वड़े-वडे मसले दुनिया के सामने है,वे साम्राज्यवादी लोग जिनमें पहले से अधिक वर्ग-चेतना आयी है, आइन्दा के अपने साम्राज्यवादी हितो की रक्षा और स्थायित्व को भी जोखिम में डालकर अपने वर्ग के हितो को वनाये रखना चाहते है।

इसलिए, हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि हमें जो भी नीति वनानी हो, उसे सही नींव पर वनाना और असली वुराई को उखाड फेंकना है। इस वात को हम समझ रहे है कि हमे मध्ययूरोप, चेको-स्लोवाकिया, स्पेन और चीन की और दूसरी वहुतेरी समस्याओ को अव एक साथ लेकर उन्हें एक सम्पूर्ण वस्तु मानकर विचार करना है।

मै आपको एक समस्या का ध्यान और दिलादूँ कि जिसपर अक्सर हम इस सिलसिले मे कुछ भी नही सोचते, लेकिन जो इन दिनों हमारे

सामने बहुत ज्यादा आ रही है। वह समस्या है फिलस्तीन की। यह एक निराली समस्या है और हम इसे अरबो और यहूदियो के झगड़े के रूप मे ही बहुत ज्यादा देखने के आदी होगये हैं। मै शुरू मे आपको यह याद दिलादूं कि ठीक २००० बरसो से फिलस्तीन मे अरबो और यहूदियो मे कभी कोई सच्चा झगडा नही हुआ। यह समस्या तो हाल ही मे लडाई के जमाने से उठ खडी हुई है। बुनियादी तौर पर यह समस्या फिलस्तीन में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पैदा की हुई है और जबतक आप इसको ध्यान मे न रखेगे तबतक आप इसे हल नही कर पायेगे और न ब्रिटिश साम्राज्य ही इसे हल कर सकेगा और यह सच है कि उन सरगर्मियो के कारण जो इस समस्या से पैदा हो गयी है इस समय यह समस्या कुछ कठिन भी होगयी है। तो फिलस्तीन की समस्या असल मे है क्या ?

वहाँ यहूदी लोग है और हममें से हरेक की यहूदियो से अत्यन्त सहानुभूति है, खासकर आज जबकि वे सताये जा रहे है और यूरोप के कई देशो से निकाले जा रहे है। यह ठीक है कि यहूदियो ने कई तरह की गलतियाँ की है, लेकिन जबसे वे फिलस्तीन मे आये है तबसे उन्होने देश की बडी सेवा की है। लेकिन आपको याद रखना चाहिए कि फिलस्तीन खासकर अरब का देश है और यह आन्दोलन बुनियादी तौर पर अरबो का स्वतन्त्रता पाने के लिए राष्ट्रीय सघर्ष है। यह अरब-यहूदी समस्या नही है, यह तो साररूप मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति का सघर्ष है। यह मजहबी मसला भी नही है। शायद आपको मालूम होगा कि अरब के मुसलमान और ईसाई दोनो इस जद्दोजहद मे बिल्कुल एक है। शायद आपको यह भी मालूम होगा कि उन पुराने यहूदियो ने, जो लडाई के पहले फिलस्तीन में रहते थे, इन जद्दोजहद मे बहुत कम हिस्सा लिया है—क्योंकि उनका अपने पडोसी अरब से निकट सम्बन्ध रहा है। यह तो

बिल्कुल समझ मे आनेवाली बात है कि अरब लोग अपने देश से वंचित किये जाने की कोशिश का विरोध क्यो न करें ? कही की भी जनता यही करती। आयर्लैण्ड, स्काटलैण्ड या इंग्लैण्ड के निवासी भी यही करते। यह सवाल अपने निजी देश से न निकाले जाने और स्वाधीनता और स्वतन्त्रता चाहने का सवाल है।

इसलिए अरब लोगो ने यह आन्दोलन अपने देश की आजादी के लिए उठाया, मगर ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने ऐसा हथकडा फेरा कि यह झगडा अरबों और यहूदियो का झगडा बन गया और फिर ब्रिटिश सरकार सरपच का काम करने आ बैठी।

फिलस्तीन की समस्या केवल एक ही तरह सुलझ सकती है और वह यो कि अरब और यहूदी लोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद को बिल्कुल न पूछें और आपस में समझौता कर ले। मेरा अपना खयाल यह है कि ऐसे बहुतेरे अरब और यहूदी हैं जो इस तरह से उस मसले को सुलझाना चाहते हैं। बदनसीबी से हाल की घटनाओ से ऐसी मुश्किलें पैदा होगयी है जिनसे साम्राज्यवादी पुर्जो ने खिलवाड किया है और इसलिए अरबो-यहूदियो का मेल होने में थोडा अर्सा लगेगा, लेकिनहमारा यह काम और फर्ज होना चाहिए कि इस दृष्टिबिन्दु पर जोर डालते हुए इस बात को स्पष्ट करें कि

(१) आप अरब लोगो को कुचलने की कोशिश करके इस समस्या को नही सुलझा सकते; और—

(२) यह झगडा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नही बल्कि दोनो खास पक्षों के मिलकर कुछ शर्तें कबूल करके समझौता करने से सुलझेगा।

मै उन बहुत से देशो का जिक्र करना नही चाहता कि जो पराधीन हैं या जो आज दूसरी मुश्किलों मे मुब्तला है क्योकि आज तो करीब-

करीब हरेक देश के साथ ऐसा ही है। यह हो सकता है कि हम बाद मे उनकी समस्याओ पर विचार करे, लेकिन मेरा यह पक्का खयाल है कि हम अफ्रीका के देशो को न भूले, क्योकि शायद दुनिया के किसी देश ने इतनी तकलीफे नही उठायी और पिछले दिनो किसीका इतना शोपण नही हुआ, जितना कि अफ्रीका के लोगो का।

हो सकता है कि इस शोषण-क्रिया में कुछ हदतक मेरे अपने ही देश के निवासियो ने हिस्सा लिया हो। इसके लिए मुझे दुख है। जहाँ तक हम हिन्दुस्तानवालो का प्रश्न है, हम जो नीति रखना चाहते है वह यह है हम नही चाहते कि हिन्दुस्तान से कोई किसी देश मे जाये और वहाँ ऐसा कोई काम करे जो उस देश के निवासियो की मर्जी के खिलाफ हो, फिर चाहे वह देश बर्मा या पूर्वी अफ्रीका या दुनिया का कोई भी हिस्सा क्यो न हो। मै समझता हूँ कि अफ्रीका के भारतीयों ने बहुत से अच्छे-अच्छे काम किये है, बहुतो ने बहुत ज्यादा नफा उठाया है। मेरा खयाल है कि अफ्रीका मे या दूसरी जगह रहनेवाले भारतीय इस समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते है। लेकिन केवल इसी आधार पर हम उनके वहाँ रहने का स्वागत करे कि अफ्रीकावासियो के हितो को हमेशा पहले स्थान दे।

मेरा खयाल है कि आप इस बात को समझ रहे होगे कि अगर हिन्दुस्तान स्वतन्त्र होजाये तो वह दुनिया-भर मे साम्राज्य की धारणा मे बडा भारी फर्क डाल देगा और उससे सब-के-सब पराधीन लोगो को फायदा पहुँचेगा।

हम भारत का, चीन का और दूसरे देशो का तो खयाल करते है मगर अफ्रीका को अक्सर भूल ही जाया करते है और हिन्दुस्तान के लोग चाहते है कि आप उनका भी ध्यान रक्खें। आखिर, हिन्दुस्तान के लोग

भले ही तमाम प्रगतिशील लोगों की ओर से मिलनेवाली मदद और हमदर्दी का स्वागत करे लेकिन, आज शायद उनमें इतनी ताकत है कि अपनी लड़ाई आप लड ले—जबकि यह बात अफ्रीका के कुछ लोगो के बारे मे सच न हो। इसलिए अफ्रीका के लोग हमारी ओर से खास खयाल किये जाने के मुस्तहक हैं।

आपमे से अधिकाश शायद मेरे इन विचारों से सहमत होगे। इस हॉल (भवन) के बाहर बहुतेरे लोग उससे शायद सहमत न भी हो। बहुत से लोग यह भी कह सकते है कि ये खयालात आदर्शवादी है और आज की दुनिया से उनका कोई सरोकार नही है। मैं समझता हूँ कि इससे ज्यादा बेवकूफी का खयाल शायद ही कोई हो। इसी रास्ते पर चलकर हम आज अपनी समस्याएँ सुलझा सकते है और अगर आपका यह खयाल हो कि हम इन बुनियादी मसलो को उठाये बिना उन्हें हल कर सकते है तो आप बडी भारी गलती कर रहे हैं।

इन समस्याओ को हाथ मे लेने का आज का एक छोटा-सा नमूना भी है। वह नमूना है स्पेनिश मोरक्को में 'मूर' लोगो का। उनकी समस्या को हाथ मे लेने में देर हुई तो झट स्पेन की फ़ासिस्ट टुकडी ने उस मौके का फायदा उठाया; तरह-तरह के झूठे वायदे किये और उन्हे उन्ही लोगो पर हमला करने के लिए अपनी तरफ भर्ती कर लिया जो इन्हें आज़ादी दे सकते थे और इस तरह बेचारे बदनसीब मूर लोगों को धोखा दिया गया। अगर इस समस्या का उचित रीति से मुकाबला नही किया गया तो इसी तरह की बात बार-बार होती रहेगी।

किसी पराधीन देश से जिसके अपने लोग ही खुद पराधीन बने हुए है, हम यह आशा शायद ही कर सके कि वह दूसरो की आजादी में उत्साह दिखा सकेगा।

इसीलिए, हिन्दुस्तान में, हमने इसे अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है और कांग्रेस ने घोषणा कर दी है कि वह साम्राज्यवादी युद्ध में कोई हिस्सा नहीं लेगा। जबतक हिन्दुस्तान पराधीन है, तबतक उससे यह उम्मीद करना बेहूदा है कि वह एक ऐसे उद्देश्य के लिए कि जो किसी साम्राज्य को मजबूत करने के पक्ष में हो, अपने जन और साधन दे सके।

स्थिति को हाथ में लेने का सही तरीका तो यह है कि साम्राज्यवाद की जड़ उखाड़ी जाये, पराधीन लोगों को पूरी आज़ादी दे दी जाये और फिर दोस्ताना ढंग से उनके पास जाकर उनसे शर्तों के साथ समझौता किया जाये। अगर इस तरीके से उनके पास पहुँचे तो वे मित्रता दिखायेंगे, नहीं तो यह होगा कि लगातार दुश्मनी बनी रहेगी, मुश्किलें और झगड़े चलते रहेंगे और जब संकट पैदा होगा और खतरा आ जायेगा, तो तरह-तरह की उलझनें उठ खड़ी होंगी और कह नहीं सकते कि क्या होगा। इसीलिए मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि आप यह याद रखें और समझें कि हम आज दूर के आदर्शवादी हलों को नहीं बल्कि मौजूदा जमाने की समस्याओं को हाथ में ले रहे हैं और अगर हम उनपर ध्यान नहीं देंगे और उनसे कतरा जायेंगे तो इसमें खतरा है।[१]

---

१. १५, १६ जुलाई १९३८ को लन्दन में शान्ति और साम्राज्य के प्रश्न पर 'इण्डिया लीग' और 'लन्दन फेडरेशन ऑव पीस कौंसिल्स' की ओर से हुई परिषद्, के अध्यक्ष-पद से दिया हुआ भाषण।

: २ :

नगरों पर बमबारी

आज की इस विराट सभा को मुझे हिन्दुस्तान की जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की ओर से शाति-स्थापना के कार्य मे पूरी सहायता देने का आश्वासन और बधाइयाँ देनी है। मैं राजाओ, रानियो और राजकुमारो की ओर से नही वल्कि अपने करोड़ों देशवासियो की ओर से बोल रहा हूँ। हमने शाति के इस कार्य से अपना सबध बडी खुशी के साथ इसलिए जोडा है कि यह समस्या अत्यत आवश्यक है। और इसलिए भी कि किसी भी दशा मे हमारा पिछला इतिहास और हमारी सभ्यता भी हमे यही करने के लिए प्रेरित करती। कारण यह है कि पिछली कई शताब्दियो से हमारे महान् बन्धु-राष्ट्र चीन की तरह, हिन्दुस्तान की भावना भी शाति की रही है। स्वतन्त्रता के हमारे राष्ट्रीय सघर्ष मे भी हमने इसीको अपना आदर्श समझकर शातिमय उपायों को अपनाया है। इसीलिए हम वड़ी खुशी के साथ शाति के लिए प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा करते है।

कल लार्ड सैसिल ने कहा था कि केवल युद्ध को मिटा देने से ही अन्त मे शाति मिल सकती है। इस कथन से हम पूर्ण सहमत है। युद्ध को मिटा देने के लिए हमे युद्ध के कारणो और जड़ को मिटाना होगा। गुज़रे ज़माने मे चूँकि हमने इस समस्या पर ऊपर-ऊपर ही विचार किया, इसकी जडो को नही छुआ, इसलिए हम अवतक कोई भी काम की चीज़ नही पा सके। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति लगातार बिगड़ती गयी है और लाखो के लिए मत्यु और अकथनीय कष्ट लायी है। अगर हम लड़ाई की उन जड़ों की

ओर से लापरवाह वने रहेगे तो हम फिर असफल होगे और शायद उस असफलता मे वरवाद भी हो जायेगे।

आज हम देखते है कि फासिस्ट हमले दुनिया को युद्ध की तरफ खीचे ले जारहे है और हम उसकी निन्दा करते और उसका मुकावला करना चाहते है तो ठीक ही करते है। लेकिन हालाँकि फासिज्म पश्चिम मे हाल ही मे पैदा हुआ है मगर हम उसे अर्से से एक दूसरे भेष और दूसरे नाम—साम्राज्यवाद—से जानते-पहचानते है। गुजरे ज़माने मे पीढियो तक उपनिवेश-देशो ने साम्राज्यवाद के नीचे कष्ट झेले है और अव भी झेल रहे है। यही साम्राज्य वनाने का खयाल, जो साम्राज्यवाद या फासिज्म के रूप में काम कर रहा है, लडाई का ज़ोरदार कारण है, और जवतक वह नही मिट जाता, तवतक सच्ची और स्थायी शाति नही हो सकती। एक पराधीन देश के लिए कभी शाति है ही नही क्योकि शाति तो स्वतन्त्रता के साथ ही आ सकती है। इसलिए साम्राज्यो को मिटना चाहिए, उनका जमाना वीत चुका। अव हमे न सम्राटो से दिलचस्पी है न राजा-नवावों से, हमे दिलचस्पी है दुनिया भर के लोगो से,और भारतीय राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) भारत के रहनेवालो और उसकी स्वतन्त्रता की समर्थक है। आज भी शाति में सहायता पहुँचानेवालो मे हिन्दुस्तान एक शक्तिशाली अग है। और अगर विश्व-सकट पैदा हुआ तो वह स्थिति को वहुत वदल सकता है। इस मामले मे उसे न तो कोई उपेक्षित कर सकता है और न वह ऐसा चाहता है। स्वतत्र भारत शाति की एक शक्तिशाली मीनार होगा, और हमें आशा है कि भारत जल्दी ही स्वतत्र होगा।

लार्ड सैसिल ने कट्टर राष्ट्रीयता के खतरे वतलाये है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि मै उनसे पूर्ण सहमत हूँ और यद्यपि मैं हिन्दुस्तान की

राष्ट्रीयता और हिन्दुस्तान की आजादी का समर्थक हूँ, फिर भी मैं वह समर्थन सच्ची राष्ट्रीयता की बुनियाद पर कर रहा हूँ। हम हिन्दुस्तान-वाले बडी खुशी से ऐसी विश्व-व्यवस्था में सहयोग देंगे और दूसरे लोगों के साथ कुछ हदतक राष्ट्रीय प्रभुत्व तक के कुछ अश को छोड देने को राजी हो जायेंगे, बशर्ते कि सामूहिक सुरक्षितता की कोई योजना हो। लेकिन ऐसा तो तभी हो सकता है जब राष्ट्र शान्ति और स्वतत्रता के आधार पर सम्बद्ध हो जायें।

औपनिवेशिक देशो की पराधीनता रहे और साम्राज्यवाद चलता रहे, इस आधार पर तो कोई विश्वव्यापी सुरक्षितता कायम नही रह सकती। आज शाति और युद्ध की तरह स्वतन्त्रता भी अविभाज्य है। अगर आज के आक्रमणकारियो को रोकना है तो कल के आक्रमणकारियो से भी हिसाब माँगना होगा। चूँकि हमने पिछली बुराइयो को ढकने की कोशिश की है—भले ही वह अब भी मिटी न हो—इसलिए आज की इस नयी बुराई को रोकने की हममे ताकत नही रही है।

बुराई को न रोकने से वह बढती है, बुराई को बर्दाश्त कर लेने से वह तमाम क्रियाओ में ही ज़हर फैला देती है। और चूँकि हमनें अपनी पिछली और आज की बुराइयो को बर्दाश्त कर लिया है इसलिए अन्त-र्राष्ट्रीय कामो मे बुराई फैल गयी है और कानून और न्याय वहाँ से गायब हो गये है।

यहाँ हम खास तौर से शहरो और कस्बो की आबादी पर आस-मान से बमबारी होने के बारे में चर्चा करनें के लिए इकट्ठे हुए हैं। दिनो दिन डर-पर-डर आ-आकर छा रहे है और हालाँकि वर्तमान पर सोच-विचार करते हुए डर लगता है, मगर भविष्य के पेट में तो ऐसा कुछ है जो ऐसा ज्यादा बुरा होगा कि जिसकी कल्पना भी नही हो सकती।

हाल ही में मै वार्सीलोना गया था और अपनी आँखो मैने उसकी वरवाद हुई इमारतो को, मुँह फाडे हुए दरारो को, और आसमान में तेज़ दौडते हुए और अपने पीछे मौत और वरवादी के दृश्य लाते हुए वमो को देखा। वह तस्वीर मेरे दिल पर खिच गयी है और स्पेन और चीन मे होनेवाले रोज़ाना की वमवारी की खवर मेरे कलेजे में छुरी की तरह चुभती है और उसकी भयकरता से मै खिन्न हो उठता हूँ। लेकिन उस तस्वीर के ऊपर एक दूसरी तस्वीर है—स्पेन के तेजस्वी लोगो की, जो इन भयानक घटनाओं को झेलते हुए उनके मुकावले में दो लम्बे वरसो तक अनुपम वीरता के साथ लडे है और जिन्होने अपने खून और कष्टो से ऐसा इतिहास लिख दिया है जो आनेवाले युगो को प्रेरणा देता रहेगा। प्रजातन्त्र-स्पेन के इन महान् स्त्री-पुरुषो को मै हिन्दुस्तानियो की ओर से आदर के साथ श्रद्धाजलि अर्पण करता हूँ और जिनके साथ हम इतिहास के प्रभातकाल से ही हज़ारो वन्धनों से जुडे हुए है, उन चीनवासियो की ओर भी हम साथीपने की भावना से अपने हाथ वढा रहे है। उनके खतरे हमारे खतरे है, उनकी तकलीफें हमे चोट पहुँचाती है और हमारे कैसे भी भले या वुरे दिन क्यो न आयें, हम उनके साथ रहेंगे।

स्पेन और चीन में होनेवाली इन आसमान से बमवारियों से हमे गहरी व्यथा होती है। लेकिन तो भी वमवारी हमारे लिए कोई नयी वात नही है। यह वुराई तो पुरानी है और चूँकि इसे चलते रहने से रोका नही गया इसलिए आज इसने इतना विशाल और भयकर रूप धारण कर लिया है। क्या आप भारत की उत्तर-पश्चिमी सरहद पर हुई उन वमवारियो को भूल गये, जो पिछले कई वरसों से अभी तक होती चली आ रही है? वहाँ मैड्रिड, वार्सीलोना, कैण्टन, हैको जैसे

शहर अलबत्ता नही है; मगर हिन्दुस्तान के सरहद्दी गाँवो में भी इसान—आदमी, औरत और बच्चे ही रहते है और जब ऊपर आसमान से बम गिरते है तो वे भी मरते या विकलाग होजाते है। क्या आपको याद है कि यह बमबारी का सवाल बहुत बरसो पहले राष्ट्रसघ मे उठाया गया था, और ब्रिटिश सरकार ने सरहद पर उसे रोकने से इनकार कर दिया था ? इसे पुलिस की कार्रवाई कहा गया था और उन्होने उसको रहने देने पर ही ज़ोर दिया था। यह बुराई रोकी नही गयी और अगर अब वह बढ गयी है तो इसमें अचम्भा ही क्या है ? इसकी जवाबदेही किसके सिर पर है ?

ग्रेटब्रिटेन के प्रधानमत्री ने हाल ही मे अपने इस अपवाद को वापिस ले लेने का आश्वासन दिया है, बशर्ते कि आसमान से होनेवाली बमबारी को रोकने पर सब राज़ी होजायें। लेकिन यह आश्वासन खोखला है, जबतक कि वह कार्रवाई करके तमाम सरहद्दी बमबारियो को रोक न दें। तबतक दूसरो की बमबारियो के खिलाफ उज्र करने के कोई मानी और कोई वकत नहीं।

चिसेस्टर के डीन ने कल इस परिषद् मे यह माँग की थी कि ऊपर से बमबारी करनेवाले देशो के साथ कोई सुलह न की जाये। इस भावना की ठीक ही सराहना की गयी। तब इग्लैण्ड का क्या होगा जो अब भी हिंदुस्तान की सरहद पर बम बरसाने के लिए जिम्मेदार है ? क्या यह इस कारण है कि ब्रिटिश सरकार इस प्रश्न पर निर्दोष रहकर नही सोच सकती और उन्होने अपनी विदेशी नीति को ऐसा बना लिया है कि उसपर भरोसा करना ठीक नही और अब वह उस राष्ट्र से दोस्ती और समझौता करने पर उतारू है जो स्पेन मे होनेवाली इस बमबारी के लिए सबसे अधिक जवाबदेह है ? मै तो इस बुराई करनेवाले और

आक्रमणकारी की पीठ ठोकने की नीति से हिन्दुस्तान को बिलकुल अलग कर देना और कह देना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान के लोग इसमे कोई हिस्सा न लेगे और जब कभी उन्हे मौका मिलेगा, वे उसका मुकाबला करेगे।

स्पेन मे हम अहस्तक्षेप का भयकर तमाशा देख चुके है, जिसने अच्छे-अच्छे शब्दो और प्रजातत्रीय नीति के बुर्के मे स्पेन के बागियो और हमलाइयो को मदद पहुँचायी है और उस देश के लोगो को अपनी हिफाजत करने के साधन पाने से रोका है। उन बागियो तक माल पहुँचाने के लिए समुद्र और दूसरे सैकडो दरवाजे खुले हुए है, लेकिन पिरेनीज की सरहद अहस्तक्षेप के नाम पर बन्द करदी गयी है, हालाँकि बमबारी व रसद की कमी से औरते और बच्चे भूखो मर रहे है।

हम स्पेन के आक्रमणकारियो और उपद्रवियो की निन्दा करते है, उनपर दोष लगाते है, लेकिन उन्होने कम-से-कम खुले आम अन्तर्राष्ट्रीय कानून और सुघडता के तमाम कायदो को ठुकराया है और दुनिया को उन्हे रोकने की चुनौती दी है। मगर उन सरकारो का क्या होगा, जो बात तो बडी बहादुरी से शाति और कानून की करती है, मगर जिन्होने इस चुनौती के आगे सिर झुका दिया है और हरेक नयी छेडखानी को बर्दाश्त कर लिया है और बुराई करनेवालो से दोस्ती करने की कोशिश की है ? उन लोगो का क्या होगा जिन्होने ऐसे वक्त पास खडे-खडे उदासीन रहने का जुर्म किया है जबकि जिन्दगी और जिन्दगी से भी अधिक पाक चीज को कुचला और बेइज्जत किया जा रहा था।

आज भी आक्रमणकारी राष्ट्र दूसरे राष्ट्रो से क्या सख्या, क्या ताकत और क्या लडाई के साधनो मे कमजोर है, मगर फिर भी ये दूसरे राष्ट्र बेबस और कारगर कार्रवाई करने मे असमर्थ दिखाई देते है। क्या ऐसा होने की वजह यह नही है कि उनकी पिछली और मौजूदा साम्राज्य-

वादी नीतियो ने उनके हाथ-पाँव बाँध रक्खे है ? इन सरकारो से कुछ न वन पडा। अब वक्त है कि लोग कार्रवाई करे और उन्हे अपने ऐमाल सुधारने को मजबूर करे। यह कार्रवाई फौरन बमबारियो को रोकने, पिरेनीज़ की सरहद को खोलने और बचाव करने के साधनों और रसद को प्रजातन्त्रीय स्पेन मे पहुँचने देने की होनी चाहिए। अगर बमबारी जारी रहे तो वायुयान-विरोधिनी तोपे और रक्षा की दूसरी सामग्री भी वहाँ पहुँचने दी जानी चाहिए।

इन पिछले दो सालों मे स्पेन और चीन मे कितनी बड़ी-बडी बरबादियाँ हुई है! भूखों मरते और घायल स्त्रियाँ और बच्चे सहायता माँगने के लिए आर्त्तनाद कर रहे है और दुनिया भर के तमाम भले और समझदार लोगो का काम है कि उनकी मदद करे। यह समस्या दुनिया भर की है और हमें विश्वव्यापी आधार पर सगठन करना चाहिए। संघर्ष का असली बोझ तो पीडित देशो के निवासियो पर पड़ा है, हम कम-से-कम इस छोटे बोझ को ही उठालें।

मुझे इस परिषद् मे यह कहते हुए खुशी होती है कि काग्रेस ने एक 'मेडिकल यूनिट' का सगठन किया है और उसे जल्दी ही चीन भेज रही है। भारत मे जापानी माल के अपने बहिष्कार में भी हमने काफी सफलता पायी है जैसा कि निर्यात के आँकड़ों से जाहिर होता है। एक हाल की घटना से चीनी जनता के प्रति हमारी भावना की ताकत का पता लगेगा। मलाया में जापानियो की लोहे और टीन की खाने थी, जिनमें चीनी मज़दूर नौकर थे। इन मज़दूरों ने जापान के लिए हथियार बनाने से इनकार कर दिया और खाने छोड दीं। इसपर हिन्दुस्तानी मज़दूर नौकर रख लिये गये, मगर हमारी प्रार्थना पर उन्होने भी वहाँ काम करने से इनकार कर दिया, हालाँकि इससे उनको बडी

मुसीबतें और तकलीफ़ें उठानी पड़ी।

और इस प्रकार जद्दोजहद जारी है। इस जद्दोजहद में हमारे कितने ही दोस्त, साथी और प्रियजन जान दे ही चुके है—मगर फिजूल नही। हो सकता है कि यहाँ इकट्ठे हुए हममें से न जाने कितने उसी रास्ते पर जायें और फिर न मिल सकें। मगर चाहे हम जिन्दा रहे या मरे, शान्ति और स्वतन्त्रता का उद्देश्य तो कायम रहेगा ही, क्योंकि वह हम सबसे अधिक महान् है—वह स्वयम् मानव-जाति का उद्देश्य है। अगर वही मिट जायेगा तो हम सबके सभी मिट जायेंगे। यदि वह जीवित रहा तो हम भी जीवित रहेंगे, फिर हमारे नसीब में चाहे कुछ भी क्यों न हो। इसलिए आइए, हम उसी उद्देश्य के लिए प्रतिज्ञा ग्रहण करें।[1]

---

१ पेरिस में २३-२४ जुलाई १९३८ को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलन के अन्तर्गत बुलायी गयी एक परिषद् में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से दिया हुआ भाषण।

: ३ :

चेको-स्लोवाकिया के साथ विश्वासघात

हिन्दुस्तान की आज़ादी और विश्वशान्ति का उत्कट इच्छुक भारतीय होने के नाते मैंने हाल की स्पेन और चेको-स्लोवाकिया मे हुई घटनाओं को चिन्ता के साथ देखा है। पिछले कुछ बरसो मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने ब्रितानिया की विदेशी नीति की आलोचना की है और अपने आपको उससे अलग रखा है, क्योंकि वह हमें बडी प्रतिगामी, जनतन्त्र-विरोधी और फासिस्ट व नात्सी हमलों को वढावा देनेवाली जान पडी है। मन्चूरिया, फिलस्तीन, अबीसीनिया, स्पेन ने हिन्दुस्तान के लोगों में आन्दोलन पैदा कर दिया है। मचूरिया मे हमले को बढावा देने की नीव पडी और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के तमाम कायदो और समझौतों की ओर से आँख मूँदकर राष्ट्रसघ के काम को बिगाड दिया गया। यूरोप मे यहूदियो ने भयानक और अमानुषिक अत्याचार सहने में जो सकट उठाये उनसे हमदर्दी और सद्भावना रखते हुए हमने उनके सघर्ष को असल मे आज़ादी के लिए किया जानेवाला राष्ट्रीय सघर्ष समझा है कि जिसका ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हिन्दुस्तान आनेवाले समुद्री रास्ते को कब्ज़े मे रखने के लिए ज़ोर ज़बर्दस्ती करके दमन किया था। अबीसीनिया मे बहादुर जनता के साथ बड़ी दगा हुई। स्पेन मे प्रजातन्त्र को तग करने और बागियों की पीठ ठोकने मे कुछ कसर नही रखी गयी। यह फैसला करके कि स्पेन की सरकार को खत्म होना चाहिए या वह खत्म होनेवाली है ब्रिटिश सरकार ने भिन्न-भिन्न तरीकों से उस मकसद को जल्दी

पूरा करने की कोशिश की और बागियो की ओर से तौहीन, नुकसान और बडी भारी ज़लालत तक बर्दाश्त कर ली गयी।

यह नीति हर जगह बुरी तरह असफल रही है, इस सचाई से भी ब्रिटिश सरकार उसपर चलने से बाज़ न आयी। मन्चूरिया पर हुए बलात्कार का फल आज दुनिया मे हम चारो ओर देख रहे है। फिलस्तीन की समस्या दिन-पर-दिन बिगडती जाती है। हिंसा का मुकाबला हिंसा से होता है और जनता को दबाने की कोशिश मे सरकार दिन-पर-दिन बढनेवाली फौजी ताकत काम में ला रही है। इस बात को हमेशा याद नही रखा जाता कि यह समस्या बहुत कुछ ब्रिटिश सरकार की पैदा की हुई है और जो कुछ हुआ है उसमे से बहुत कुछ के लिए उसीको जवाब-देह ठहराना चाहिए। आपके सम्वाददाता के अनुसार तो अबीसीनिया अब भी जीता नही गया है और शायद वह ऐसा ही रहेगा। स्पेन मे जनता ने ब्रिटिश सरकार की इच्छा पर नाचने से इनकार किया है और दिखला दिया है कि वे न तो दबाने या कुचलने मे आयेगी न आ सकती है।

असफलता का यह लेखा ध्यान देने योग्य है। तिसपर भी ग्रेट-ब्रिटेन की सरकार को उससे नसीहत लेना और अपने ऐमाल दुरुस्त करना नही आता। बल्कि वह तो और भी धडाके के साथ हमलो को बढावा देने और जनरल फ्रैंको और फासिस्ट व नात्सी ताकतो को मदद देने की अपनी नीति चला रही है। इसमे शक नही कि अगर उसे चलने दिया गया तो वह इसी तरह तबतक चलती रहेगी जबतक कि वह अपने आपको और ब्रिटिश साम्राज्य को मिटा नही देती, क्योकि दूसरी सारी बातो से भी बढकर बात है उसका फ़ासिज्म की ओर वर्ग-सहानुभूति और झुकाव होना। अवश्य ही यह दुनिया को उसकी बड़ी

भारी सेवा होगी—चाहे वह कितनी ही अनजान में हो; और मैं साम्राज्यवाद के अन्त होने का विरोध करनेवालो मे सबसे आखरी हूँगा। पर मुझे विश्वव्यापी युद्ध की सम्भावना से भारी चिन्ता है और यह देखकर मुझे अत्यन्त दुख होता है कि ब्रितानिया की विदेशी नीति सीधे लडाई की ओर ले जा रही है। यह सच है कि हेर हिटलर की बात इस मामले मे आखरी फैसला करेगी, लेकिन हेर हिटलर तो खुद बहुत कुछ ब्रिटेन के रुख और रवैये पर निर्भर रहेगा। अबतक तो इस रवैये ने उसे बढावा देने और चेको-स्लोवाकिया को दाँत दिखाने और घमकाने मे कुछ भी उठा नही रखा है। तो, अगर लडाई होकर ही रही, तो ब्रिटिश सरकार को कम-से-कम यह महसूस करके सन्तोष या जो कुछ भी हो हो सकेगा कि यह सब बहुत-कुछ उसीके कारण हुआ और ब्रितानिया के लोग, जिन्होने इस सरकार को सत्ता दी है, इस सच्चाई से जो आराम उठा सकें, उठा लेंगे।

मैंने सोचा तो यह था कि (ब्रिटिश) सरकार जो कुछ करेगी उससे मुझे अचम्भा नही होगा—(सिवा एक बात के कि वह अचानक प्रगतिशील बन जाये और शान्ति-स्थापना का प्रयत्न करने लगे)। पर मैंने भूल की थी। चेको-स्लोवाकिया में हुई हाल की घटनाओ और जिन तरीको से सरकार ने—खुद या अपने बीच-बचाव करनेवालों के जरिये—जो हर मौके पर चेक सरकार को सताया और घमकाया है उसपर मेरा मन बिगड़ने लगा है और मुझे हैरानी हुई है कि कोई भी अग्रेज़ जिसमे उदारता की जरा-सी भावना या सुजनता हो, इसे कैसे बर्दाश्त कर सका ?

हाल ही मे मैंने थोड़ा समय चेको-स्लोवाकिया में बिताया था। वहाँ मैं बहुतेरे चेक और जर्मन लोगों से मिला। मैं लौटा तो भयकर खतरे और बेमिसाल कष्टो मे भी शान्त और प्रसन्नचित्त रहते हुए

शान्ति बनाये रखने की खातिर सब-कुछ करने के लिए उत्सुक और अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए दृढ निश्चयवाले जनतन्त्रवादी जर्मनो और चेको के प्रशसनीय स्वभाव के लिए प्रशसा के भावो से भरा हुआ लौटा। जैसा कि घटनाओ से ज़ाहिर होगया है, अल्पसख्यको की हरेक माँग को पूरा करने और शाति बनाये रखने की खातिर वे लोग असाधारण हदतक जाने को तैयार है। लेकिन हर कोई जानता है कि जो सवाल दरपेश है वह कोई अल्पमत का सवाल नही है। अगर अल्पसख्यको के अधिकारो के प्रेम ने लोगो को पिघला दिया होता तो हम यही बात इटली मे अल्पसख्यक जर्मनो या पोलैण्ड के अल्पसख्यको के बारे मे क्यो न सुनते? सवाल है सत्ताधारी राष्ट्रो की राजनीति का और नात्सियो की चेक-सोवियट मित्रता को तोडने का, मध्य यूरोप के एक जनतत्रीय 'राष्ट्र' को खत्म कर देने से रूमानिया के तेल के क्षेत्रो और गेहूँ के खेतो तक पहुँचने और इस तरह यूरोप पर अपना कब्ज़ा जमाने का। ब्रिटिश नीति ने इसे बढावा दिया है और उस जनतत्रीय राज्य को कमज़ोर करने की कोशिश की है।

किसी भी दशा मे हम हिन्दुस्तानवाले न फासिज्म चाहते है न साम्राज्यवाद। और हम आज हमेशा से ज्यादा इस बात को समझ गये है कि ये दोनो चीज़े निकट सम्बन्धी है और विश्व-शाति और स्वतन्त्रता के लिए खतरनाक है। हिन्दुस्तान ब्रिटेन की विदेशी नीति का विरोध करता है और उसमे हिस्सा लेना नही चाहता और हम अपनी ताकत लगाकर प्रतिक्रिया के इस खम्भे से हमे बाँधनेवाले बन्धनो को तोड देने की कोशिश करेगे। ब्रिटिश सरकार ने पूर्ण स्वाधीनता के लिए यह एक और लाजवाब दलील हमे दे दी।

हमारी पूरी सहानुभूति चेको-स्लोवाकिया से है। अगर लडाई

छिडी तो ब्रिटिश जनता अपनी फासिज्म-भक्त सरकार के होते हुए भी उसमे घसीटी जाये बिना न रहेगी। लेकिन तब भी यह सरकार जिसकी फासिस्ट और नात्सी राष्ट्रो के प्रति सहानुभूति है जनतन्त्र और स्वतन्त्रता के उद्देश्य को कैसे आगे बढ़ायेगी? जबतक यह सरकार कायम रहेगी, तबतक फासिज्म हमेशा दरवाजे पर डटा रहेगा।

हिन्दुस्तान की जनता लडाई के सम्बन्ध मे किसी भी विदेशी निर्णय को मानना नही चाहती। केवल वही फैसला कर सकती है और निश्चय है कि उस ब्रिटिश सरकार के हुक्म को जिसमे उसे बिल्कुल भरोसा नही है वह नही मानेगी। हिन्दुस्तान अपना सारा-का-सारा वज़न बड़ी खुशी-खुशी जनतन्त्र और स्वतन्त्रता की ओर डालेगा, लेकिन हम ये शब्द बीस या इससे भी ज्यादा बरसो से सुनते आ रहे हैं। केवल स्वतन्त्र और जनतन्त्रात्मक देश ही दूसरी जगह स्वतन्त्रता और प्रजा-तन्त्र को मदद पहुँचा सकते है। अगर ब्रिटेन जनतन्त्र के पक्ष मे है तो उसका पहला काम है हिन्दुस्तान से साम्राज्य को समेट लेना। हिन्दुस्तान की निगाहो में घटनाओ का क्रम यह है और इसी क्रम पर हिन्दुस्तान की जनता अटल रहेगी।[1]

---

१. २७, सेंट जेम्स' स्ट्रीट, लन्दन से ८ सितम्बर, १९३८ को मैन्चेस्टर गार्डियन' के सम्पादक के नाम लिखा गया पत्र।

: ४ :

म्यूनिक-संकट, १९३८

जैनेवा की झील—लेक लीमन—कितनी शान्त और सुन्दर दिखाई देती है। सैर करनेवालो और दर्शको को लिये हुए स्टीमर लोजान की तरफ धुआँ उडाते हुए जा रहे है। पानी की एक भीमकाय धारा झील से निकलती जान पडती है और ऊँची उठकर आसमान मे चली जाती है। पीछे की ओर माउण्ट सेलीव है जो जैनेवा नगर के ऊपर उठा हुआ है और उससे भी पीछे माउण्ट ब्लैक की बर्फीली चोटियाँ उठी हुई है। घाट के किनारे-किनारे होटलों की कतारे है। जिनपर कई राष्ट्रो के झडे हवा मे फडफडाते हुए उड रहे हैं। बिजली से चलनेवाली बडी-बडी बसें सैर करनेवालो से लदी हुई सडको पर जोर-शोर से दौडती चली जा रही है।

आगे बढने पर राष्ट्र-सघ का पुराना घर 'पैलेज विल्सन' है। उससे थोडे आगे अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय की ठोस इमारत है। और उससे भी आगे चलकर भय उपजानेवाली शान-शौकत के साथ सघ का बिल्कुल नया विशालकाय भवन खडा है।

लेकिन झील की सुन्दरता और शान्ति और शहर की तरफ ध्यान जाता ही कहाँ है। क्योकि सबके मन को तो एक ही विचार घेरे हुए है। चेकोस्लोवाकिया क्या कहता है? लन्दन में क्या हो रहा है? और पेरिस में, प्रेग मे, न्यूयार्क मे? लोग एक दूसरे से ताजा से ताजा खबरे पूछते हैं। झूठी अफवाहे खूब उडती है और मनमाने अन्दाज लगाये जाते हैं। सबके ऊपर पस्तहिम्मती छायी हुई है। राष्ट्र-सघ (लीग-

असेम्वली) की बैठक हो रही है, लेकिन उसकी परवा कौन करता है ? जैनेवा को गिनता कौन है ? लीग तो मर चुकी । पूछ तो अब है प्रेग, लन्दन, पेरिस, मास्को और बेशक हिटलर के पहाडी आश्रय-गृह की भी। राष्ट्र-सघ का महल तो एक मकबरे की तरह दिखाई देता है जो शान्ति और सामूहिक सुरक्षितता की लाश को इज्जत बख्शने के लिए बनाया गया हो। जबकि यूरोप जोश के मारे थरथरा रहा है और शान्ति और युद्ध के बीच लटक रहा है, तब लीग-असेम्वली मुख्य बात की चर्चा तक नही चलाती !

क्या हुआ—सुलह या लड़ाई ? चैकों ने क्या जवाब दिया ? ब्रिटिश और फ्रेच सरकार ने चेको-स्लोवाकिया के साथ विश्वासघात किया और उसे नाजी भेडियो के सामने फेंक दिया। क्या ब्रिटिश और फ्रेच जनता इस विश्वासघात के आगे चुपचाप सिर झुका लेगी।

रूमानिया का प्रतिनिधि इतने ऊँचे स्वर मे बोलता है कि फ्रेच डैलीगेटो का गिरोह सुन ले—"चैको-स्लोवाकिया जिन्दावाद ! फ्रास मुर्दावाद !" फ्रासवालो के चेहरे तमतमा आते है।

खबर है कि मोशिये ब्लूम ने कहा था कि वह सधि करने की उत्कट इच्छा और जो कुछ हो रहा है उसपर शर्मिन्दगी की दो टकराने-वाली भावनाओ के बीच पैदा हुए है। दूसरे फ्रासीसी महाशय कहते है—"बहुत अच्छे मोशिए ब्लम ! लेकिन आपमे जो मनोवैज्ञानिक प्रति-क्रियाएँ हो रही है उनसे हमे क्या ? हमे तो जनतन्त्र से, चैको-स्लोवाकिया से काम है।"

लन्दन की खबर ! चैक सरकार ने हिटलर-चैम्बरलेन-दलैंदिये वाले प्रस्तावों को उसूलन् तो मजूर कर लिया। फिर निराशा। लेकिन कोई कहता है कि यह सब अग्रेजो का प्रोपेगैण्डा है।

दूसरा तार। ब्रिटिश लेवर-आन्दोलन ने चेम्वरलेन की नीति की निन्दा की है और कल कारंवाई करने की एक सर्वमान्य योजना वनाने के लिए सी जी टी (फ्रेंच-लेवर-कन्फेडरेशन) की वैठक हो रही है। क्या कहने!

प्रेग की खवर। कैविनेट की वैठक अव भी चल रही है। रातभर चलती रही। अभी तक कोई फैसला नही हो पाया।

वर्लिन का तार। सरहद के करीव जर्मनो और चैको के वीच मुठ-भेड हो गयी। दूसरी खवर, जर्मनो की पलटने चैको-स्लोवाकिया की सरहद पर इकट्ठी हो रही है।

लीग के एक अग्रेज़ डेलीगेट अपनी सरकार की नीति को ठीक सावित करने की कोशिश कर रहे है। यह वडी मुसीवत और तकलीफ-देह वात है। लेकिन करते क्या? दूसरा कोई चारा नही। हिटलर चेको-स्लोवाकिया में कदम रखने ही वाला था। उसकी हवाई फौज प्रेग पर वमवारी करने के लिए तैयार थी। कुछ-न-कुछ तो होना ही चाहिए था और चेम्वरलेन ने उसे वहादुरी के साथ किया। यह सच है कि इससे जनतन्त्र और लीग के कल-पुर्जे विगड गये और चैको के साथ दगा हुई, लेकिन कम-से-कम शान्ति तो कायम रख ही ली गयी। लेकिन कवतक? और शान्ति आखिरकार कायम भी रही? अगर हिटलर ने लडाई की धमकी देकर एक ब्रिटिश उपनिवेश की माँग की, तो क्या होगा? क्या तव ब्रिटेन नही लडेगा? वेशक। इसलिए ब्रिटिश सरकार के लिए जनतन्त्र से, राष्ट्र-सघ के प्रतिज्ञापत्र (लीग कवॅनेन्ट) से, पवित्र प्रतिज्ञाओ से, आश्वासनो से और वहादुर चैको-स्लोवाकिया के नसीव से भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक उपनिवेश पर कब्जा होना था।

न्यूयार्क से टेलीफोन। चैको के साथ जो विश्वासघात हुआ उसक

विरोध और निन्दा करने के लिए एक बडी भारी सभा हुई। अच्छा हुआ। लेकिन अमरीका के लोग सिर्फ एक ऊँची नैतिक सतह से ही विरोध करते है। क्या उसके अलावा भी वे कुछ करेंगे ?

कोई कहता है किसी देश को आत्महत्या करनी हो तो सबसे अचूक तरीका यह है कि वह इग्लैण्ड और फ्रास से दोस्ती और सरक्षण की भीख माँगे। ये सरकारे निश्चय ही दगा देगी और विश्वासघात करेगी।

रूस के डेलीगेट बड़े कठोर दीखते है। चेक बडे दुखी हैं, क्या कहे ? स्पेनवाले कहने मे कमी नही रख रहे है। वे कहते है—'यह सब हम जानते है। इसका हमें तर्जुबा हो चुका है। हम अपनी मजबूत बाजुओ पर निर्भर रहे। हमारी जीत होगी और हम जनतत्र को बचा लेगे।"

ताजा खबर क्या है ? क्या हो रहा है ? अखबारवाले इधर-उधर प्रेग, लन्दन और पेरिस को टेलीफोन करते दौड रहे है। अफवाहे उड रही हैं। कभी तो पस्तहिम्मती छा जाती है और कभी उत्साह फैल जाता है। चेक कभी सर नही झुकायेंगे ! चेकों ने आत्म-समर्पण कर दिया !! लेकिन, नही। बेनेश चलता-पुर्जा आदमी है। वह पकड़ में नही आयेगा। अगर चेक सरकार ने आत्मसमर्पण किया भी तो वह मिट जायेगी और उसकी जगह दूसरी सरकार आजायेगी। हिटलर बेनेश का इस्तीफा चाहता है।

आधी रात। बेवेरिया का कॉफी-होटल, राजनीतिज्ञो और पत्रकारों का अड्डा। वहाँ एक विदेशी मन्त्री है, लीग के बहुत से डेलीगेट है, सम्पादक और पत्रकार है और बहुत से लीग के पिछलगुए है। बिअर और कॉफी उड़ रही है और लगातार बातचीत और बहस चल रही है। उस सबके पीछे तनाव है और सख्त पत्रकार तक हिम्मत दिखा रहे है।

प्रेग ने क्या तै किया ? लन्दन और पेरिस का क्या हुआ ? लन्दन

मे लोगो की नाराजगी बढ रही है। पेरिस मे चैम्बर ऑव डिप्टीज़ की बैठक कल होनेवाली है। शायद फ्रेंच सरकार का पतन हो जाये। एक नये प्रधान-मत्री का ज़िक्र हो ही रहा है। लन्दन मे पार्लमैण्ट की बैठक चल रही है। लेबर-पार्टी आक्रामक होती जा रही है। हर जगह पारा चढ रहा है, हालाँकि अखबार आराम से पैर बढाते जाते हैं।

टेलीफोन की घटियाँ बराबर हो रही है। हॅलो प्रेग! हॅलो पेरिस! ताज़ा खबर क्या है? युद्ध या शान्ति?

प्रेग की खबर—सरकार ने लोकार्नो-सन्धि की दुहाई दी है। उसकी शर्तो के अनुसार उसने पचो की मध्यस्थता की माँग की है। जर्मनी ने उसे स्वीकार किया, बाद मे हिटलर ने उसे पक्का कर दिया।

शाबाश! होशियारी का काम किया। बेनेश मूर्ख नही है। उसने ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारो को परेशानी में डाल दिया है। इसपर वे क्या कहेगे? हिटलर क्या कहेगा? स्वीडन का एक डेलीगेट कहता है कि लोकार्नो में जो मध्यस्थ नियत किये गये थे, उनमें वह भी था।

चेम्बरलेन फिर परसो हिटलर से मिलने जायेगे। हवाई जहाज से खबरे ले जाने का काम वह बड़ी अच्छी तरह से कर रहे है। शायद उनकी छोटी-सी चाय-पार्टी आखिरकार खत्म न होगी।

हॅलो प्रेग! हॅलो पेरिस! हॅलो लन्दन! क्या हुआ? शान्ति हुई या लड़ाई? बस २१ सितम्बर १९३८ तक इतना ही। शान्ति हुई या लडाई?

२१ सितम्बर, १९३८

: ५ :

लन्दन की असमञ्जस

पिछले कुछेक हफ्तो मे हुई रहस्यभरी घटनाओ के बाद इधर-से-उधर घूम लेने और अपीलो व आखिरी चेतावनियों और लडाई के बढते हुए खतरे के आजाने पर आखिरकार मि० नेविल चेम्बरलेन आम घोषणा करने चले। वह रेडियो पर बोले और मैंने भी उनकी आकाशवाणी सुनी। वह मुख्तसर थी, मुश्किल से उसमे आठ मिनट लगे होगे। जो कुछ उन्होने कहा, उसमे कुछ भी नयी चीज नही थी। उनका कथन बाल्डविन की तरह भावनाओ को उकसानेवाला था, मगर उसमे बाल्डविन की-सी झलक और उसके व्यक्तित्व की छाप नही थी। इसलिए उसका मुझपर कोई असर नही पडा। न तो उसमें उन खास मसलो का जिक्र था जो दरपेश थे, न उम नगी तलवार का जिक्र था जो दुनिया के आगे चमक-चमककर मानव-जाति को त्रस्त कर रही थी और न उस हिंसात्मक तरीके की चर्चा थी जो राष्ट्रो का कायदा बनता जा रहा था और जिसको खुद मि० चेम्बरलेन अपनी कार्रवाइयो से उकसाते आ रहे थे। उस स्वाभिमानी और बहादुर राष्ट्र का भी उसमे मुश्किल से ही उल्लेख था, जिसको इर्द-गिर्द घेरे हुए शिकारी जानवरो की खून की प्यास को बुझाने के लिए कुर्बान किया जानेवाला था, और जिक्र किया भी गया तो अपमानजनक तरीके से। कहा गया कि वह एक दूरदराज का देश है, जिसके निवासियों के बारे मे हम कुछ नही जानते। उन्ही दूर बसनेवाले लोगो की शान का, हिम्मत का, शान्तिप्रियता का, स्वतन्त्रता-प्रेम का, उनके शान्त सकल्प का और ज्वलत बलिदानो का नाम तक

नही लिया गया कि जिनपर उनके दोस्तो ने ज्यादतियाँ की और दगाबाज़ी करके उन्हे छोड दिया था। नात्सी क्षेत्रो से लगातार जो धमकियाँ मिल रही थी, अपमान किया जा रहा था और सरासर झूठ बोला जा रहा था, उसके निस्वत भी कुछ नही कहा गया था, सिर्फ खेद प्रकट करने के रूप मे हेर हिटलर की 'नावाजिव कार्रवाई' का थोडा-सा ज़िक्र था।

मैं उदास-सा हो गया और दिल अन्दर-ही-अन्दर भारी हो आया। क्या हमेशा अच्छो के साथ यही सलूक होता रहेगा, अगर उनके पास बड़ी फौजें न हुई ? क्या हमेशा बुराई की ही जीत होती रहेगी ?

मैंने सोचा, शायद मि० चेम्बरलेन अगले रोज पार्लमैण्ट में अपने मजमून के साथ ज्यादा इन्साफ कर सके। शायद आखिरकार वह जिस बात को महत्त्व मिलना चाहिए उसे देगे और हेर हिटलर का डर छोड़कर सच्ची बात कहेगे। सकट का मौका नजदीक आ रहा था। सच बात जाहिर होने का वक्त आ गया था। पर साथ ही मुझे इसपर यकीन नही हो रहा था, क्योकि मेरे आगे तो चेम्बरलेन की पिछली बाते थी, जोकि उनके फासिज्म और उसकी कार्रवाइयो की हिमायत करने का सबूत थी।

इसी समय पार्को और खुली जगहो मे खाइयो की खुदाई का काम चल रहा था, विमानभेदी तोपे चढ़ायी जा रही थी। ह० ह० हि०—हवाई हमलो से हिफाज़त—के सामान हरेक छिपने की जगह से हमारी ओर घूर-घूरकर देख रहे थे और न जाने कितने कामचलाऊ गोदामो से मर्द और औरते गैस मास्क (घातक गैस से बचाव के लिए लगाये जानेवाले ख़ास तरह के चेहरे) लगा-लगाकर देखते थे। ये गैस मास्क बडे बदसूरत और हिंसा के इस बर्बर युग के सच्चे प्रतीक थे।

लोग अपने काम-काज पर आते-जाते, लेकिन उनके चेहरो पर बेचैनी और खौफ छाया दिखाई देता। कितने ही घरो में उदासी छायी हुई थी, क्योंकि उनके प्रियजनो को आगे आनेवाली लड़ाई के लिए तैयार हो जाने का हुक्म मिला था।

घटे-पर-घटे धीरे-धीरे खिसकते गये और वह भयकर घडी नजदीक आती गयी कि जब एक आदमी के पागलपन से भरे इशारे पर हमला न करना चाहनेवाले, लाखो दयालु और सदाशय व्यक्ति एक दूसरे पर झपट पडेगे और मारकाट और सर्वनाश मचा देगे। तोपे गरजने लगेगी, आग उगलने लगेगी और बमवर्षक हवाई जहाजो के घन्नाटे से आसमान गूँज उठेगा। सकट की घड़ी! क्या वह कल होगी या परसो?

आज पुन. सुन पड़ा वही स्वर जिससे जग ने त्रास सहे
"अब तो नग्न और अनियंत्रित तलवारों का राज रहे।"

लोग मजबूर कर रहे है कि मै भी एक गैस मास्क ले लूँ। इसके खयाल से ही मुझे तो हँसी आती है। क्या मै सूँड लगाये जानवर की-सी सूरत बनाये इधर-उधर घूमता फिरूँ? मै खतरे और खौफ से घबराता नही हूँ और बार्सीलोना मे तो कुछ दिन रहकर मुझे हवाई हमलो का स्वाद मिल चुका था। मै इस बात पर भरोसा नही करता कि ये काम की चीजे है, क्योंकि अगर खतरा आयेगा ही तो चेहरा क्या हिफाजत कर सकेगा? शायद उसका खास मकसद यह हो कि पहननेवाले को इतमीनान रहे और आम जनता में हौसला कायम रहे। जब हद दर्जे का खतरा सामने होगा तो कोई नही जानता कि वह कैसे उसका आमने-सामने मुकाबला करेगा? और मेरा खयाल है कि मेरा सर आसानी से जुदा न होगा।

तो भी गैस-मास्क को नजदीक से देखने का कौतूहल मुझे हुआ

और मैंने ह० ह० हि० के एक गोदाम पर जाने का निश्चय किया। चेहरा चढाया गया और एक मैं ले भी आया।

(अमरीका के) राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने हेर हिटलर के पास एक सन्देश भेजा है। वह एक गौरवपूर्ण मार्मिक अपील है जिसमे मसले के खास मुद्दे पर जोर दिया गया है। जो कुछ वह कहते है और जिस तरह कहते है उसमे और मि० चेम्बरलेन के वक्तव्यो में कितना बडा फर्क है। प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट का एक-एक छपा हुआ शब्द तक जाहिर करता है कि उसके पीछे कोई इसान है। हिटलर के लिए दलील और अजाम का खौफ कोई मानी नही रखता। क्या हिटलर निरा पागल है कि वह अपनी उस अद्भुत कूटनीतिपूर्ण विजय को जो उसे निस्सन्देह हिंसा की धमकी देकर मिली है, लडाई में शामिल होकर खतरे मे डाल दे ? क्या वह नही जानता कि विश्वव्यापी युद्ध मे पडने पर उसकी किस्मत मे हार और बरबादी ही आयेगी और उसीके लोगो मे से अधिकाश उसके खिलाफ उठ खडे होगे या शायद उसने मि० चेम्बरलेन और मो० दलैदिये को ठीक-ठीक पहचान लिया है और वे कहाँतक जा सकते है, इसका उसे ठीक-ठीक इल्म हो गया है।

पार्लमेण्ट-भवन को जानेवाली सडको पर भीड़ ही भीड है, और वातावरण मे उत्तेजना है। भवन के भीतर की जगह रुकी हुई है और दर्शको की गैलरियाँ खचाखच भरी हुई है। लार्ड लोग अपने पूरे जोर-शोर के साथ हाजिर है। वे बिल्कुल बुर्जुआओ की भीड़ ही जान पड़ते है और नीची श्रेणी के इसानो से उनमें कोई फर्क नही नजर आता। ड्यूक आफ केण्ट की बगल मे लार्ड बाल्डविन विराजमान है। उनकी दूसरी बगल में लार्ड हैलीफैक्स और केण्टरबरी के आर्चबिशप है राज-नीतिज्ञो की गैलरी मे भीड है। रूस का उप-राजदूत वहाँ है और चेको-

स्लोवाकिया के मत्री मो० मसारिक भी, जो राष्ट्र का निर्माण करनेवाले मशहूर पिता के बेटे है, वही है। क्या उसी शानदार इमारत को, जिसे पिता ने निर्माण किया था, बेटा बरबाद होते देखेगा ?

प्रधान-मन्त्री ने शुरूआत की। उनकी शक्ल प्रभावशाली नही है। उनके चेहरे पर बडप्पन नही है। वह बहुत-कुछ एक व्यापारी जैसे जान पडते है। उनका भाषण ठीक होता है। घण्टे भर उन्होने भाषण दिया। वह एक तरह का सफाचट वर्णन था, जिसमे जहाँ-तहाँ व्यक्तिगत बाते थी और ऐसे अलफाज थे जिनसे दबी हुई उत्तेजना झलकी पडती थी। न जाने क्योंकर मुझे लगा (या मेरा खयाल हो) कि वह शख्स इतना बडा नही है कि उस काम के लायक हो जो उसने हाथ में लिया है और उसके शब्दो और तरीको से भी यही भावना बारबार जाहिर हो जाती है। अपनी व्यक्तिगत दस्तन्दाजी पर, हिटलर के साथ हुई उनकी बातचीत पर और दुनिया की हलचलो मे वह जो हिस्सा ले रहे है, उसपर वह उत्तेजित हो जाते है, उन्हे नाज़ हो आता है। ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री होते हुए भी वह ऐसे बडे-बडे कामो के अभ्यस्त नही है और खतरे के कामो का नशा उन्हे चढा रहता है। पामर्स्टन होता, ग्लैडस्टन होता या डिजरैले होता तो मौका न चूकता। कैम्पबेल बैनरमैन होता तो जो कुछ कहता उसमे आग भर देता। बाल्डविन सभाभवन को पकडे रखता और चर्चिल भी दूसरे ढग से यही करता, एस्क्विथ भी मौके के लायक शान के साथ बोलता। लेकिन मि० चेम्बरलेन ने जो कुछ कहा उसमे न तो कोई हार्दिकता थी और न कोई बुद्धि की गहराई। यह तो बिलकुल साफ जाहिर हो गया कि वह किस्मतवाले आदमी नही है।

मेरा खयाल उनकी हिटलर के साथ हुई मुलाकात की तरफ गया और मैने सोचा कि वे हिटलर से दब-से गये होगे, उसकी बार-बार दी

गयी आखिरी चेतावनियो से ही नही, बल्कि उसके ज़ोरदार लगनवाले और थोडे-बहुत सनकी व्यक्तित्व से भी, क्योकि हिटलर में चाहे जितना बुरा इरादा हो, फिर भी उसमे कुछ-न-कुछ तात्त्विकता है और मि० चेम्बरलेन तो धरती के है, पार्थिव। फिर भी मि० चेम्बरलेन चाहते तो उस तात्त्विक शक्ति का मुकाबला दूसरी ताकत से करते, जो खुद तात्त्विक होते हुए भी कही ज्यादा जबरदस्त थी और वह ताकत थी सगठित प्रजातन्त्र या लाखो-करोडो व्यक्तियो की इच्छा की। उनके पास न वह ताकत थी और न उसे हासिल करने की कोशिश थी। वह तो अपने तग दायरे में ही चक्कर काटते रहे और मर्यादित शब्दो मे ही सोचते और लाखो को पिघला देनेवाली प्रेरणा को बढावा देने अथवा उसे व्यक्त करने की कभी कोशिश नही करते थे। वैसी परिस्थिति मे यह तो लाज़िमी ही था कि इरादो मे टक्कर होने पर उनको हिटलर के आगे झुकना पडता।

लेकिन क्या इरादो की टक्कर थी भी? मि० चेम्बरलेन ने जो कुछ कहा उससे ऐसी किसी टक्कर का इशारा तक नही मिलता था क्योकि उनके कामो मे कोई टक्कर नही थी। वह हिटलर के पास हमदर्दी और बहुत-सी स्वीकृतियाँ और समझौते लेकर पहुँचे। ऊँचे सिद्धान्तो की, आज़ादी की, प्रजातन्त्र की, मानवीय अधिकारो और न्याय की अन्तर्राष्ट्रीय कानून और नीतिमत्ता की चर्चा नही हुई और तलवार के न्याय की बर्बरता का, उकता देनेवाले झूठ का, नात्सीवाद के परम पुजारियो की अमानुषता का कुछ ज़िक्र तक नही हुआ। जर्मनी में अल्पसख्यको के साथ हुए उन अत्याचारो की कोई चर्चा नही हुई जिनकी दुनिया मे मिसाल नही है, और न पैसा ऐंठने की ज़बरदस्तियों और धमकियो के आगे सर न झुकाने की कोई बात ही छिड़ी। सिद्धातो पर शायद ही

कोई झगड़ा हुआ हो, सिर्फ चन्द ब्यौरे की बातों की चर्चा हुई। यह साफ है कि अगर मि० चेम्बरलेन की इंग्लैण्ड-सम्बन्धी परिस्थिति को छोड़ दें तो उनका दृष्टिकोण हिटलर से कोई ज्यादा भिन्न नहीं था।

अपने उस लम्बे भाषण में उन्होंने हिटलर की तारीफ में, उसकी ईमानदारी और उसकी सचाई मे यकीन होने और यूरोप मे और ज्यादा इलाके न चाहने के उसके वायदे के बारे मे बहुत-कुछ कह डाला। मगर राष्ट्रपति रूजवेल्ट और उनके महत्त्वपूर्ण सन्देशों का ज़िक्र तक नही किया। रूस का भी कोई ज़िक्र नही हुआ, हालाँकि रूस का चेको-स्लोवाकिया की किस्मत से इतना गहरा सम्बन्ध है।

और खुद चेको-स्लोवाकिया की निस्बत भी क्या? हाँ, उसका ज़िक्र ज़रूर था, मगर उसके निवासियों की बेमिसाल कुरबानियों के बारे में, असह्य उत्तेजना मिलने पर भी उनके आश्चर्यजनक संयम तथा गौरव के सम्बन्ध में, और प्रजातन्त्र का झण्डा ऊँचा रखने की निस्बत एक लफ्ज़ तक नही कहा गया। इसे छोड़ देना बड़ी आश्चर्यजनक और महत्त्वपूर्ण भूल थी, जो जानबूझकर की गयी थी।

मि० चेम्बरलेन के भाषण पर श्रोतागण स्तब्ध थे—वक्ता की दलीलों की उत्कृष्टता या उसके व्यक्तित्व की वजह से नहीं, बल्कि विषय के अत्यन्त महत्त्व की वजह से। उनके भाषण का अन्त नाटकीय ढंग से हुआ। कल वह सिन्योर मुसोलिनी और मो० दलैदिये के साथ म्यूनिक जाने-वाले हैं और बड़ी कृपा करते हुए हिटलर ने एक क़ाबिलेग़ौर रिआयत की है कि वह २४ घंटे तक लड़ाई की तैयारी का हुक्म न देगा।

इस नाटकीय ढग से और इससे होनेवाली इस उम्मीद से कि शायद लडाई टल जाये, मि० चेम्बरलेन ने पार्लमेण्ट-भवन को उत्तेजित करने में कामयाबी पायी। पिछले चन्द दिनो का बोझ हल्का हुआ और

सबके चेहरो पर राहत नजर आने लगी।

यह अच्छा हुआ कि युद्ध टल गया, चाहे अब भी वह टला एक या दो दिन के ही लिए हो। उस युद्ध का विचार करना तक भयानक था, तो उससे मिलनेवाली थोडी-सी भी राहत सबको अच्छी क्यो न लगती ?

और फिर, और फिर, चेको-स्लोवाकिया का क्या हुआ ? प्रजातन्त्र और आज़ादी का क्या हुआ ? क्या अब कोई दूसरी दगाबाज़ी करके उस राष्ट्र की पूरी हत्या होनेवाली थी ? म्यूनिक मे जो यह अजीब चौकडी जमा हुई, वह क्या फासिस्ट-साम्राज्यवादी चार राष्ट्रो की सधि के उस नाटक की प्रस्तावना थी जिसमे रूस को अलग कर दिया गया, स्पेन को खत्म कर दिया गया और तमाम प्रगतिशील तत्त्वो को कुचल दिया गया ? मि० चेम्बरलेन के पिछले इतिहास को देखते हुए लाजमी तौर पर यही खयाल करना पडता है।

तो कल हिटलर और मुसोलिनी से चेम्बरलेन साहब मिलेगे। उनके लिए तो एक ही काफी था। दो-दो ज़बर्दस्त मिल जायेंगे तो न जाने उनके नसीब में क्या बदा होगा ! सम्भव है, मि० चेम्बरलेन और मो० दलैंदिये उनके शब्द-जाल में फँसकर जो कुछ हिटलर कहेगा सब मान लेगे और फिर अपनी दूसरी मेहरबानी के बतौर हिटलर चन्द दिनो या हफ्तो के वास्ते जग को मुल्तवी करने पर राजी हो जायेगा। वह सचमुच एक महान् विजय होगी ! और तब हिटलर का शान्तिदूत के रूप में अभिनन्दन होना चाहिए। शाति का नोबल पुरस्कार शायद अब भी उसको दिया जा सके, हालाँकि मि० चेम्बरलेन भी जोर-शोर से उसे जीतने की कोशिश करेगे।

२८ सितम्बर, १९३८

: ६ :

हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड

ढाई साल पहले मैं इग्लैण्ड पहुँचा था और वहाँ की विभिन्न पार्टियों और दलों के बहुत से व्यक्तियो से मिला था। उन्होने भारत की समस्या में शिष्टतापूर्ण दिलचस्पी जाहिर की थी और हम जिस मकसद के लिए लड रहे है उससे सहानुभूति दिखायी थी। मैने उस शिष्टता की कद्र की थी और उस हमदर्दी का स्वागत किया था। लेकिन वह सब होते हुए भी मैने दोनों में से किसी को भी बडा महत्त्व नही दिया क्योकि मै अच्छी तरह जानता था कि वहाँ के आम लोगों में तो हिन्दुस्तान के प्रति उदासीनता और रुखाई है ही, उन लोगो मे भी है कि जिनका काम ऐसी समस्याओ पर विचार करना है।

मैने देखा कि वहाँ के लोगो की आम मशा हिन्दुस्तान के बारे मे कुछ न सोचने और मामले को टालने की है। वह समस्या काफी उलझी हुई थी और मुसीबत से भरी दुनिया मे उनकी एक मुसीबत और क्यो बढा दी जाये ? भारतीय शासन-विधान मजूर हुआ ही था और चूँकि वह असन्तोषजनक था, इसलिए कम-से-कम उससे एक फायदा तो हुआ। इसने मामले को कुछ अर्से के लिए मुलतवी कर दिया और उन्हे उसकी बावत कुछ विचार न करने का एक बहाना मिल गया।

मुझे इससे निराशा नही हुई क्योकि मैने इससे कोई ज्यादा उम्मीदे नही बाँधी थी और बरसो से हम लोगो ने यह सबक सीखा है कि दूसरों के आसरे कभी न रहें बल्कि अपनी खुद की ताकत बढाये। मैं भारत लौट आया। पर हमारी समस्या दूर नही हुई क्योंकि इग्लैण्डवाले उसपर

विचार नही कर रहे थे, बल्कि वह बढती ही गयी और साथ-साथ हम भी वढते गये ।

इसी बीच, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पहले से ज्यादा चिन्ताजनक हो गयी और हमे यह समझ मे आने लगा कि हिन्दुस्तान का मसला इस विश्वव्यापी समस्या का ही एक अग है और अगर कोई सकट या युद्ध आ पडा तो हम हिन्दुस्तान मे रहनेवाले उसपर असर डाल सकते है । हम लोगो के साथ-साथ दूसरे लोगो को भी यह जाहिर होने लगा है और हिन्दुस्तान की आजादी पाने की जद्दोजहद अन्तर्राष्ट्रीय सतह तक जा पहुँची है ।

इग्लैंड की अपनी इस यात्रा मे मुझे फिर अपने नये और पुराने मित्रो से मिलने और वहुतेरी सभाओ मे हिन्दुस्तान के विषय मे भाषण देने के सुअवसर मिले हैं ।

मैंने फिर भी भारत के बारे मे एक तरह की उदासीनता और काफी नावाकफियत उनमे पायी और उसका ध्यान स्पेन, चीन और मध्य यूरोप की आवश्यक समस्याओ मे लग जाना लाजमी था । लेकिन तो भी मैंने काफी फर्क पाया। और देखा कि हिन्दुस्तान के मसलो पर नजर डालने का तरीका भी नया और ज्यादा यथार्थवादी हो गया है । हो सकता है कि यह इस बात के समझने से हुआ हो कि आज हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन की ताकत बहुत बडी है, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बहुत नाजुक है और यह डर पैदा हो गया है कि सकट का मौका आने पर हिन्दुस्तान खतरे को और भी वढा सकता है। शायद इसी गम्भीर परिस्थिति और सिरपर मँडराने वाले सकट की भावना ने ही लोगो को अपनी पुरानी दिमागी लीको से हटने को और सचाई तथा असलियत के साथ सोच-विचार करने को मजबूर किया था ।

क्योंकि असलियत तो यह है कि भारत पूरी स्वतन्त्रता चाहता है और उसे पाने के लिए कमर बाँधे हुए है। हमारी भयकर गरीबी की समस्या सुलझायी जाने के लिए चिल्ला रही है और वह समस्या तबतक हल होनेवाली है नही, जबतक कि हिन्दुस्तान के निवासी अपने देश का बिना किसी बाहरी दखल के मनचाहा राजनैतिक और आर्थिक भविष्य बना लेने का अधिकार न पालें। दूसरी बात यह भी है कि भारतवासियो की सगठित शक्ति पिछले वर्षो मे काफी बढ गयी है और किसी भी बाहरी ताक़त के लिए उन्हे स्वराज की ओर बढने से अधिक दिनों तक रोक रखना मुश्किल है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी छिपे तौर पर हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन को बडा बल दे रही है।

कट्टर दल भी यह मानता है कि हिन्दुस्तान की परिस्थिति की ठीक-ठीक जाँच का सार यही निकलता है कि हिन्दुस्तान आजादी पाकर रहेगा। दूसरो की सद्भावना से मिले तो बेहतर है, पर ऐसा न हो तब भी वह रुक नही सकती। इसीलिए आज करीब-करीब हर शख्स हिन्दुस्तान की आज़ादी की बात करता है।

इस दृष्टिकोण से देखने पर प्रान्तीय स्वराज और फेडरेशन के प्रश्न इस व्यापक प्रश्न के मुकाबले छोटे पड जाते है। यह ज़रूर है कि उनके कारण एक बहुत बडा सघर्ष छिड सकता है लेकिन खास सवाल तो आजादी का ही है और रहेगा, और हम अपने एक-एक कदम की, अपनी एक-एक नीति की अकेले इसी प्रश्न की कसौटी पर जाँच करके फैसला करेंगे कि क्या वह हमे ताकत देता है और स्वतन्त्रता को हमारी पहुँच के अन्दर ला देता है।

अगर अड़चन डाली गयी, अगर हमपर कोई चीज थोपने की कोशिशे की गयी, तो हमारी कार्रवाई मुखालफत की होगी। अन्तिम परिणाम

वही होकर रहेगा, क्योकि उस उद्देश्य को पाने के लिए ऐसी ताकते काम कर रही है जो इन्सान के वस के वाहर है। हो सकता है कि वह कार्रवाई मित्रता और सद्भावना के साथ हो और मित्रता और सहयोग की ओर ले जाये अथवा उसके पीछे दुर्भावना और विरोध रहे, जिससे भविष्य अन्धकारमय हो जाये और आपस के स्वस्थ सहयोग में रुकावटें पैदा हो जाये।

मेरा विश्वास है कि इसी सारी वात को समझ लेने की वजह से ही वहाँ के वहुतेरे लोगो के रुख मे यह सव तवदीली हुई है। वे जान गये है कि गतिशील परिस्थिति मे कुछ न करने और उदासीन बने बैठे रहने से कुछ लाभ नही होता बल्कि कुछ कर गुजरने की नीति ज्यादा फायदे-मन्द होती है।

दुर्भाग्य की वात है कि इग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के पीछे इसी विरोध और सघर्ष का इतिहास है। एक हिन्दुस्तानी इसे आसानी से नही भूल सकता। फिर भी आज के युग में—जिसके गर्भ में कुछ छिपा हुआ है—जवकि दुनियाभर मे सघर्ष है, फासिस्ट हमले हो रहे है और भयकर लडाई के आसार हमेशा बने ही रहते है, अगर हम छोटी-छोटी गयी-गुजरी वातो का खयाल करते और काम करते रहे तो उससे हमको ही खतरा है। अव तो हमको उनके ऊपर उठकर बडी व्यापक दृष्टि रखनी चाहिए।

मुझे तो यकीन है कि भविष्य मे हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड आपसी भलाई के लिए एक-दूसरे को वरावर मानते हुए आपस मे सहयोग कर सके यह सभव है। लेकिन सल्तनत की छाया मे वह सहयोग होना नामुमकिन है। पहले उस सल्तनत को खत्म करना होगा और हिन्दुस्तान को अपनी आजादी हासिल करनी होगी, तभी सच्चा सहयोग मुमकिन हो सकेगा।

एक भारतीय राष्ट्रवादी होने के नाते मुझे इग्लैण्ड से कुछ नही कहना है, क्योकि हम उसकी कल्पना साम्राज्यवाद की ही भाषा मे करते हैं। मै तो वही काम कर सकता हूँ जिससे हमारी अपनी शक्ति बने, बढ़े और हमारा ध्येय प्राप्त करा सके।

लेकिन दुनिया मे शाति और स्वतन्त्रता पर ठहरी हुई सुव्यवस्था देखने का परम इच्छुक होने के नाते मुझे इग्लैण्ड और उसके निवासियो से बहुत कुछ कहना है, क्योकि मै देख रहा हूँ कि आज की अग्रेज सरकार ऐसी नीति पर चल रही है, जो शान्ति और स्वतन्त्रता दोनो के लिए खतरनाक है।

उस नीति से हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड के बीच की खाई बढेगी क्योकि हम उसके कतई खिलाफ है और उसे आज की दुनिया की एक बुराई समझते है। क्या इस बुनियाद पर हमारे उनके बीच सहयोग हो सकता है ?

एक समाजवादी के नाते मुझे यहाँ के अपने साथियो से और भी ज्यादा कहना है। पिछले दिनो इग्लैण्ड की लेबर पार्टी साम्राज्यवादी मामलो पर खास तौर पर भारत के सम्बन्ध मे भयानक रूप से ढिलमिल रही है। उसकी कारगुजारियाँ खराब है। लेकिन खतरे के इन दिनो मे हममे से कोई भी ढिलमिल होने या दोअर्थी बात करने की हिम्मत नही करता। इसलिए यही मौका है कि इग्लैण्ड की लेबर पार्टी उन सिद्धान्तो पर चले जिनको उसने चलाया है और मुनासिब बात भी यही है कि यह कार्रवाई हो जानी चाहिए।

लेबर पार्टी को फासिज्म-विरोधी होने के साथ-ही-साथ साम्राज्य-वाद-विरोधी भी होना चाहिए। उसे सल्तनत को खत्म करने का हामी होना चाहिए उसे साफ शब्दो मे हिन्दुस्तान की आजादी की और उसकी

जनता के इस अधिकार की घोषणा कर देनी चाहिए कि वह विधान-पचायत द्वारा अपना विधान खुद बनाले और इसकी पूर्ति मे जो कुछ उससे बन सके उसे करने के लिए उसे तैयार रहना चाहिए।

हमे फेडरेशन के बारे मे कोई ज्यादा अफसोस नही है क्योकि हम तो चाहते है सारा-का-सारा भारतीय शासन-विधान हटा ही दिया जाये और उसकी जगह हमारा अपना तैयार किया विधान आ जाये।

छोटे-छोटे उपायों का वक्त अब नही रहा। अब तो दुनिया सकट की ओर दौड रही है। अगर दुनिया की प्रगतिशील ताकते साथ मिल-कर कोशिश करे, तो हम अब भी उस सकट को टाल सकते है। इस साझे मे हिन्दुस्तान भी अपना हिस्सा ले सकता है, लेकिन सिर्फ स्वतन्त्र होकर ही। इग्लैण्ड की लेबर पार्टी अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होगी तो भविष्य में इग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के दर्मियान मित्रता और सहयोग की बुनियाद पडेगी।

यह देखकर तसल्ली होती है ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेता इस दिशा मे सोच रहे है। और यह जानकर और भी ज्यादा प्रसन्नता होती है कि मजदूर आन्दोलन का पूरा दल-बल बडे उत्साह के साथ आजादी की इस पुकार को सुन रहा है।

दुनिया आज तेजी से दौड रही है और कौन जानता है कि कल क्या हो ? हिन्दुस्तान में भी रद्दोबदल हो रही है और वह आगे बढ रहा है और हो सकता है कि हमारी सारी योजनाएं जल्दी ही पुरानी पड़ जायें लेकिन हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड की प्रगतिशील शक्तियो में सद्भावना होने से एक ऐसे भावी सहयोग की नीव पड सकती है जिससे दोनो का भला हो और विश्व-शान्ति और स्वतन्त्रता को मदद पहुँचे।

२८ अक्टूबर, १९३८

: ७ :

रूस की खुशामद

बीस साल पहले तरुण सोवियट-प्रजातन्त्र पर सब तरफ से इग्लैण्ड, अमरीका, फ्रास और जापान जैसे ताकतवर देश टूट पडे थे। खुद उसी के इलाके मे प्रति-क्रान्ति उठ खड़ी हुई थी और दूर-दूर से उसको समर्थन मिला था। रूस के पास फौज नही थी, पैसा नहीं था, लडाई के साधन या उद्योग-धन्धे नही थे, और लडाई, हार और क्रान्ति के बाद निहायत बदइन्तजामी फैल गयी थी, जिसके कारण वह बरबाद होने को था और उसके दुश्मन ताक रहे थे कि कब वे अन्त में उसपर हावी हो जाये। यहाँतक कि जो उसके साथी थे वे भी उसका फिर से उठना नामुमकिन-सा मानते थे और सोच बैठे थे कि अब तो उसे मिटना ही है। लेकिन एक महान् पुरुष के अदम्य सकल्प और प्रतिभा ने ऐसी ज़िन्दगी और नयी उम्मीद पैदा की कि रूस ने इन सब भयकर मुसीबतो को पार किया और वह ज़िन्दा रहा।

लेकिन फिर भी वे लोग उसे नफरत और हिकारत की निगाह से देखते रहे, गोया वह राष्ट्रो के बीच मे कोई अछूत—अन्त्यज—हो कि जो उच्च वर्णो को चुनौती देने चला हो। उन्होने उसकी कोई पूछ नही की, उससे कोई वास्ता नही रखा, उसकी बेइज्ज़ती की और उसके रास्ते मे हर तरह की मुसीबतें पैदा की। मगर वह तो इस तानेज़नी को सुना-अनसुना करता हुआ जीता रहा और उस नयी ज़िन्दगी को लाने में लगा रहा जिससे वह इतना बडा हिम्मत का काम करने के लिए तैयार हुआ था। उसके रास्ते में परीक्षा और सकट की घड़ियाँ आयी और

अक्सर उसने गलतियाँ की और गलतियो के लिए नुकसान उठाया। मगर फिर भी वह एक प्रकार के विश्वास और ताकत को लेकर अपने सपनो की दुनिया बनाता हुआ बढता ही चला गया।

शायद सपने तो कतई सच्चे न हो सके, क्योकि असलियत मन मे बनी हुई तसवीर से जुदा थी। फिर भी एक दुनिया बनी, एक बहादुराना नयी दुनिया, जिसमे एक जान थी, उम्मीद थी, सुरक्षितता थी और उन लाखो इन्सानो के लिए, जो उसके लम्बे-चौडे इलाको मे बसे हुए थे, खुशहाली का जमाना लानेवाली थी। बिजली की रफ्तार से उद्योग-धन्धे फैले, शहर बस गये, खेती ने उसकी शक्ल को ही बदल डाला और कल के गये-गुजरे तरीको की जगह सामूहिक खेती होने लगी। साक्षरता का प्रसार होने लगा, शिक्षा और सस्कृति की उन्नति हुई, विज्ञानो को अपनाया गया और योजनाभरे वैज्ञानिक तरीको का उपयोग राष्ट्र के नवनिर्माण मे किया गया।

दुनिया को दिलचस्पी हुई। अरे, जबकि तमाम दुनिया कुचली जा रही है, एक तरह की आर्थिक मन्दी से जिसका गला घुट रहा है और हर जगह बेकारी बढ रही है, तब यह तेजी से तरक्की होने और बेकारी कम होने की अजीब चीज कैसी! राजनेता और चान्सलरो ने इस गैरमामूली बर्ताव को पसन्द नही किया। उनके अपने लोगो के आगे यह बुरी मिसाल थी। वे सोवियट को मुसीबत मे डालने के जाल रचने लगे, वे छेडखानी के बर्ताव करके उसे भडकाने लगे, वे उसे लडाई मे फाँसने लगे। मगर उसने इन अपमानो की परवा न की और लडाई में पडने से इनकार किया। अपने राष्ट्र के नवनिर्माण का जबर्दस्त कार्यक्रम लेकर उसने जान-बूझकर दृढता के साथ वैदेशिक मामलो मे शाति की नीति कायम रखी।

इसी बीच, उसने अपनी सेना और हवाई ताकत भी बढ़ा ली और ज्योंही ये तैयार हो चुकी, उन लोगो मे भी जो उसे नापसन्द करते थे उसके लिए इज्ज़त हो गयी। लेकिन इज्ज़त के साथ-साथ डर भी उन लोगो में पैदा हुआ और वे फिर चालें चलकर उसे अकेला छोड़ देने और नयी फासिस्ट ताकतो को उसके खिलाफ उभाड़ने की कोशिशें करने लगे। यूरोप के प्रजातन्त्र के हिमायतियों ने नात्सियो और फ़ासिस्टो से मुहब्बत की, उनके हमलो को बर्दाश्त किया, उनकी हैवानियत को और असभ्यतापूर्ण उद्दण्डता को दरगुज़र किया, जो उनके आसरे थे उन्हे धोखा दिया, और अपने साथियो और दोस्तों से दग़ाबाजी की—और सब सिर्फ इस उम्मीद से कि सोवियट को कुचलकर नात्सियों से उसपर हमला कराया जाये। उन लोगों ने म्यूनिक के समझौते में उसे पूछा ही नही—हालाँकि वह फ्रास का और उसी देश का मित्र था कि जिसे अलग करने को वे जमा हुए थे। अन्त तक सोवियट अपने साथियो के साथ सच्चा और अपने वायदो पर कायम रहा।

म्यूनिक की घटना होने और सन्तुष्ट करने की नीति के खुल खेल लिये जाने के बाद ८ महीने गुज़र गये। और अब ईश्वर की लीला है कि सोवियट रूस की कोई अवहेलना नही कर सकता! अब उसे चाहने और उसकी कृपा चाहनेवाले बहुतेरे है। हिटलर भी, जो कि साम्यवाद का बडा दुश्मन है, उसकी इज्ज़त करता है और समझौता चाहता है। फ्रास और इग्लैण्ड उसके पीछे-पीछे लगे हुए है और मीठी-मीठी बाते करके इस बात को छिपाना चाहते है कि पहले उसे नहीं चाहते थे। एकाएक सोवियट रूस अन्तर्राष्ट्रीय मामलो का कर्त्ता-धर्त्ता बन गया है और उसका फैसला आज स्थिति मे बडी भारी रद्दोबदल कर सकता है।

सोवियट रूस आज यूरेशिया महाद्वीप में सबसे ज्यादा ताकतवर

देश है। अपनी बडी फौज और विशालकाय हवाई ताकत के लिहाज से ही वह ताकतवर नही है बल्कि उसके साधन अटूट है और उसनें समाज का जो ढाँचा तैयार किया है वह बडा शक्तिशाली है। हिटलर के जर्मनी के पास भले ही हथियारबन्द फौज हो, मगर उसकी बुनियाद कच्ची है और लडाई या शाति को कायम रखने की ताकत उसमे नही है। वह बुड्ढा हो ही चला है। और वह चलता रहे इसके लिए उसे ताकत की दवा बार-बार मिलने की जरूरत है। ये ताकत की दवाएँ उसके पास हरेक नये हमले से और इग्लैंड और फ्रास की सद्भावना से मिली है। जर्मनी के साधन महदूद है और उसकी धन-शक्ति ज्यादा-से-ज्यादा खर्च हो चुकी है। हाँ, फ्रास के पास उम्दा फौज है और उसकी कीमत हो सकती है, मगर वह तो अभी से ही सब राष्ट्रो मे पीछे पड गया है। इग्लैण्ड की सल्तनत बहुत बडी है, लेकिन अब वह है कहाँ? उसके पास बडे-बडे साधन है, लेकिन उसकी बडी-बडी कमजोरियाँ भी है। उसके भी घमण्ड और हुकूमत के दिन लद गये।

अगर सोवियट रूस न होता तो आज इग्लैण्ड होता कहाँ? या फ्रास या यूरोप के पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिण पूर्वी देश कहाँ होते? यह खयाल बडा अजीब है कि यूरोप में नात्सियो के हमले का सफल मुकाबला करनेवाला किला सोवियट रूस है। सोवियट की मदद के बिना आज अधिकाश दूसरे देश लड़ने की कोशिश करने के पहले ही मिट सकते है। उसकी मदद के बिना इग्लैण्ड का पोलैण्ड और रूमानिया को आश्वासन देना कोई मानी नही रखता।

आज दुनिया मे दो ही ताकते जाँच-पडताल के बाद ठहरती है। एक तो अमेरिका के सयुक्त-राष्ट्र और दूसरा सोवियट रूस। सयुक्त-राष्ट्र तक तो कोई नही पहुँच सकता और उसके साधन अपार है। भौगो-

लिक दृष्टि से सोवियट-सघ की स्थिति अच्छी नही है, लेकिन फिर भी वह करीव-करीव अजेय है। तमाम दूसरी ताकते इन दोनो से नीचे दर्जे की है, और अपनी हिफाजत के लिए उन्हे अपने साथियों के आसरे रहना पडता है। और ज्यों-ज्यो समय वीतता जायेगा त्यो-त्यो यह विपमता वढती जायेगी।

और यही कारण है कि उसके साम्यवादी के होते हुए भी वे लोग जो उससे नफरत करते थे आज उसकी खुशामद कर रहे है। ईश्वर की लीला है!

३० मई, १९३९.

: ८ :

इंग्लैण्ड की दुविधा

परम्परा से ब्रिटेन की विदेशी नीति इस आधार पर रही है कि साम्राज्य व उसके स्थल और जलमार्गों की हिफाजत रहे, यूरोप मे शक्ति-सन्तुलन अर्थात् राष्ट्रो की ताकत की समतोलता कायम रहे ताकि इग्लेंड सबपर हावी रहे और आर्थिक दृष्टि से ब्रिटेन का प्रभुत्व बना रहे जैसा कि महायुद्ध के सौ बरस पहले रहा था। १९ वी सदी के उत्तरार्द्ध मे सयुक्त-राष्ट्र अमरीका और जर्मनी इग्लैण्ड के औद्योगिक आधिपत्यों को चुनौती देने लगे। साम्राज्यवादो मे टक्कर शुरू होगयी, जिसका नतीजा हुआ, १९१४ का महायुद्ध। इस लडाई के बाद राजनीतिक दृष्टिकोण से इग्लैण्ड की स्थिति बड़ी फायदेमन्द होगयी, परन्तु सयुक्त-राष्ट्र उसके आर्थिक प्रभुत्व को ललकारने लगा। अमरीका के साथ कडी टक्कर लेते रहने के बाद इग्लैण्ड ने जैसे-तैसे दुनिया मे अपनी आर्थिक स्थिति वैसी ही बना ली, हालाँकि वह एक कर्ज़दार राष्ट्र रहा और सयुक्त-राष्ट्र कही ज्यादा मालदार और दुनिया की बडी ताकतो में अकेला कर्ज़ देनेवाला (Creditor) राष्ट्र था। मगर इस दिखावटी जीत के लिए इग्लैण्ड को जो कीमत चुकानी पडी वह बहुत बडी थी, उसके यहाँ बेकारी बढी और उद्योग-धन्धे बैठने लगे। चीज़ो के दाम एकदम गिर गये।

राजनैतिक जनतन्त्र की शुरुआत करने मे अगुआ होते हुए भी यह अजीब बात थी कि वह सामाजिक दायरे मे पिछडा हुआ था। आज भी इग्लैण्ड यूरोप के अधिकाश देशो से सामाजिक मामलो मे ज्यादा

अनुदार है। चूँकि वह सम्पन्न हो रहा था और अपने साम्राज्य मे होने-वाले शोषण से आयी हुई सम्पत्ति से मालामाल हो रहा था, इसलिए सामाजिक संघर्ष का असर उसपर बिल्कुल नही हुआ—और हुआ तो कम होगया। कुछ हदतक उसके श्रमिक (मज़दूर) लोग इस नयी दौलत मे हिस्सा बँटानेवाले हुए, लेकिन दृष्टिकोण मे वे साम्राज्यवादी थे। इग्लैण्ड का वास्तविक श्रमिक-वर्ग तो हिन्दुस्तान और ब्रिटिश उपनिवेशों मे बसता था।

सोवियट रूस के उत्थान व साम्यवादी और समाजवादी विचारों की पैदाइश के साथ ही ब्रिटेन के शासक-वर्ग मे खलबली मच गयी और उन्होने महायुद्ध के बन्द होते ही सोवियट शासन का अन्त कर देनें की कोशिश की। वे कामयाब नही हुए, मगर दुश्मनी का रुख जारी रहा। चूँकि रूस को वे सामाजिक और राजनीतिक दोनों निगाहो से खतरनाक समझते थे, इसलिए वैदेशिक विभाग की परम्परागत नीति का इस दुश्मनी के साथ मेल बैठ गया। जापान के मंचूरिया पर होनेवाले हमले को न रोका जाने का लाजमी अजाम यह होता कि राष्ट्र-सघ के सारे ढाँचे को दफना दिया जाता। और फिर भी, इग्लैण्ड ने इसे बर्दाश्त ही नही कर लिया, बल्कि उसे बढावा भी दिया! तत्कालीन वैदेशिक मन्त्री सर जॉन साइमन अपनी राह को छोडकर जापान की मदद करने चले गये और इस तरह राष्ट्र-सघ के कल-पुर्ज़े बिगाड़ दिये। इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति का तमाम आधार उस समय भी यही था और आगे भी रहा कि सोवि-यट-सघ का विरोध किया जाये और उसे क्या यूरप और क्या सुदूरपूर्व दोनो में कमज़ोर कर दिया जाये। वैदेशिक विभाग या ब्रिटिश शासक-वर्ग के लोग अपने-अपने विचारो में साफ थे और किसी तरह की शंका उन्हे न थी। कुछ लोग चाहे चिल्ल-पौ मचाते और विरोध ज़ाहिर

करते, लेकिन नीति पर वे कोई असर नही डाल सकते थे। सिर्फ कभी-कभी उस मूलभूत नीति को व्यक्त करने के तरीके में वे जरूर फर्क पैदा कर देते थे।

हिटलर के आने से स्थिति मे एक पेचीदा उलझन होगयी। यह उलझन दो प्रकार से उठ खडी हुई। पहले तो यह कि इस यूरोप में शक्ति-सन्तुलन के विगड जाने का खतरा होगया, दूसरे व्रिटिश जनता आमतौर पर हिटलर और उसके तौर-तरीको के खिलाफ थी। लेकिन विदेशी-विभाग अपनी पुरानी नीति पर चलता रहा। हिटलर का खतरा तो दूर का था लेकिन सोवियट की तरफ से सामाजिक और राजनैतिक खतरा ज्यादा निकटवर्ती और खतरनाक समझा गया था। जनमत को समय-समय पर वहादुरीभरी तकरीरो से तसल्ली दे दी जाती थी, लेकिन पुरानी नीति चलती रही। सोवियट के खिलाफ हिटलर को तैयार करना ही अव इस नीति का मकसद था। इसलिए हिटलर को हर तरीके से वढावा दिया गया और दरअसल व्रिटिश सरकार की सीधी छत्रछाया में नात्सी जर्मनी की ताकत वढ गयी। यह वढावा इस हदतक पहुँचा कि फ्रास को अलग करके डराया गया। इग्लैण्ड और जर्मनी की जल-सन्धि से, जो वार्साई की सधि और राष्ट्र-सघ की अवहेलना करके की गयी थी और जिसका फ्रासीसी सरकार को पता नही था, फ्रास इतना परेशान हुआ कि वह मुसोलिनी के वाहुपाश मे जा फँसा और अभिवचन दे दिया कि अवीसीनिया पर हमला होगा तो वह दखल नही देगा। मुसोलिनी जानता था कि अगर फ्रास ने दखल नही दिया तो इग्लैण्ड भी चुप रहेगा। अव मैदान उसके लिए खुला था। इस तरह अवीसीनिया के ऊपर होनेवाला हमला इग्लैण्ड की नीति का ही सीधा परिणाम था।

ब्रिटेन ने इसको सब-का-सब तो पसन्द नहीं किया, क्योंकि इसमे इग्लैण्ड के कुछ साम्राज्यवादी हित आते थे। वे थे—नील नदी की उत्तरी जलधाराएँ, स्वेज नहर और भूमध्यसागर। इस तरह इंग्लैण्ड के इन साम्राज्यवादी हितो और वैदेशिक विभाग की तत्कालीन नीति मे टक्कर होने लगी। नीति ही कायम रही, क्योकि ब्रिटिश सरकार इटली की फासिस्ट सरकार को मिटाये जानें के बिलकुल खिलाफ थी। उसकी नीति का मकसद तो था फासिज्म और नात्सीवाद की रक्षा करके उनके ज़रिये साम्यवाद से लडना। सामाजिक खतरा राजनैतिक खतरे से बढकर समझा गया। लेकिन इंग्लैण्ड की जनता मुसोलिनी के अबीसीनिया के हमले के सख्त खिलाफ थी और उसे तसल्ली देने को कुछ-न-कुछ करना पड़ा। राष्ट्र-सघ कुछ कम हानिवाले अधिकारो पर राजी होगया और तत्कालीन वैदेशिक मत्री सर सेम्युअल होर ने संघ के सिद्धान्तो की व्याख्या करते हुए एक भापण दिया, जिसमे सामूहिक सुरक्षितता की कसम खायी गयी। इस तकरीर की उचित दाद दीगयी। इग्लैण्ड ने इसपर अपने आपको बड़ा पुण्यवान् और मन-ही-मन खुश समझा—जैसा कि वह हमेशा ही किया करता है जबकि उसके साम्राज्यवादी हितो का मेल ऊँचे दर्जे की नीतिमत्ता से बैठा दिया जाता है। वही सर सेम्युअल साहब बहुत जल्दी अपनी जेनेवा की तकरीर बिल्कुल भूल गये और उन्होने अबीसीनिया की बाबत मो० लेवेल के साथ एक गुप्त समझौता कर लिया। इसका भेद खुल गया और ब्रिटिश जनता को इससे धक्का पहुँचा क्योकि इस नीति-परिवर्तन के मुआफिक बनाने के लिए उसे मौका नही दिया गया था। सर सेम्युअल होर को विदा होना पडा। मि० ईडन मंच पर आये।

लेकिन नीति मे कोई बड़ी तब्दीली नही हुई और इंग्लैण्ड की

जनता की नाराजगी और उत्तेजना के वावजूद वैदेशिक-विभाग चुपचाप अपनी पूर्वनिश्चित नीति पर चलता ही रहा। राष्ट्रपति रुजवेल्ट का यह सुझाव कि तेल-सनदो को जारी किया जाये, जिससे इटली की शक्ति कम होगयी होती, नही माना गया वल्कि इसके वजाय अग्रेजो की ऐंग्लो-ईरानियन तेल-कम्पनी इटली को तेल भेजने मे रात-दिन लगी रही। अवीसीनिया पर आखिर वलात्कार हो ही गया।

इसी वीच हिटलर परिस्थिति का फायदा उठाकर आगे वढा और उसने अपनी स्थिति को मजबूत कर लिया। फ्रास बहुत ज्यादा भयभीत होने लगा, मगर इग्लैण्ड नात्सी जर्मनी के हर-एक कदम पर मुस्कराता ही रहा। हाँ, कभी-कभी नाराजगी भी जाहिर कर देता था।

इसके वाद आया स्पेन-विद्रोह, जिसका इटली और जर्मनी ने उनकी मदद से वडी होशियारी से सचालन किया था। यह कसौटी कडी थी। यहाँ एक जनतन्त्र के आधार पर निर्वाचित सरकार पर एक फौजी गिरोह ने तनख्वाहदारो और विदेशी ताकतो से मिलकर हमला कर दिया था। जैसा कि हाल ही में मि० लॉयड जार्ज ने पूछा है, अगर रूस स्पेन में विद्रोह की आग भड़का देता तो मि० चेम्वरलेन क्या करते ? क्या वह इसपर मुस्करा देते और स्टालिन के साथ कोई समझौता कर लेते ?

एक मुश्किल और भी थी। इग्लैण्ड के साम्राज्यवादी हितो का सीधा सम्वन्ध यहाँ था और अगर स्पेन दुश्मन के हाथो में आ जाता, तो 'सल्तनत' के लिए खतरा था। तव यूरप का शक्ति-सतुलन विलकुल गडवड हो जाता, नात्सियो का तानाशाही दल सवपर हावी हो जाता, फ्रास चारों ओर से घिर जाता, भूमध्यसागर पर शत्रुराष्ट्रो का कब्जा हो जाता, जिव्राल्टर मुकावला न कर पाता और वडी-वडी व्यापारिक राहें भारी खतरे मे पड जाती ? फिर भी चूँकि वैदेशिक विभाग का

प्रजातन्त्र और समाज की उन्नति का विरोध साम्राज्य के लालच से भी कही वढ़ा-चढा था, इसलिए उसकी पुरानी नीति कायम रही। हस्तक्षेप न करने की घोषणा की गयी जिसका मतलव यह हुआ कि इटली और जर्मनी दस्तन्दाज़ी करे और स्पेन के प्रजातंत्रीय शासन का गला घोट दें।

अग्रेजो के जहाज भूमध्यसागर मे डुवो दिये गये और इग्लैण्ड मे चिल्लाहट मच गयी। आखिर वैदेशिक विभाग परेशान हुआ पर सोचने लगा कि शायद यह निकट का खतरा सामाजिक खतरे से वडा होगा। थोडी देर तक उसने दृढता दिखायी और न्योन मे मि० ईडन ने घोषणा की कि इग्लैण्ड इसे वर्दाश्त नही करेगा और अगर यह लूट जारी रही तो वह कार्रवाई करेगा। यह पहला ही मौका था जव कि इंग्लैण्ड ने नात्सी और फासिस्ट राष्ट्रो को अपने दांत दिखाये और स्थिति एकदम सुधर गयी।

मि० ईडन और वैदेशिक विभाग इस नतीजे पर पहुँचे थे कि यह तव्दीली होना जरूरी है और थोडे से अर्से तक उन्होने यह रास्ता अख्तियार किया। लेकिन जल्दी ही मि० नेविल चेम्वरलेन ने कुछ और ही सोचा वह हेर हिटलर और सिन्योर मुसोलिनी की लल्लो-चप्पो करने के लिए पूरी तौर पर तुले हुए थे, और इस नये प्रजातन्त्रीय स्पेन से उसे नफरत थी और इससे भी ज्यादा नफरत उसे रूसी सोवियट-संघ से थी। सो ईडन गये और उनकी जगह लार्ड हैलीफैक्स आये। अन्तरग सभा, जिसमें प्रधान मन्त्री, लार्ड हैलीफैक्स, सर जॉन साइमन और सर सेम्युअल होर थे, इनके विरोध में कोई आवाज़ नही उठा सकती थी जिससे इन्हे तकलीफ हो। अव वे अपनी 'सन्तुष्ट करने की नीति' पर वेरोक-टोक चल सकते थे, फिर चाहे उसका अजाम इंग्लैण्ड और उसकी सल्तनत के लिए कुछ भी क्यो न हो। इस दुविधा से उन्हें कोई परेशानी नही हुई क्योकि सवसे ज़रूरी काम हिटलर अथवा मुसोलिनी को परेशान न करना था।

सिन्योर मुसोलिनी चूंकि स्पेन के प्रजातन्त्र को कुचलने पर उतारू था इसलिए जितनी जल्दी यह हो जाता उतना ही अच्छा था। ब्रिटिश सरकार ने झटपट सिन्योर मुसोलिनी के साथ एक समझौता कर लिया और फ्रांस को अपने स्पेन से मिले हुए सीमान्त प्रदेश को बन्द करने पर मजबूर किया। उन्हें बड़ी बेसब्री और उत्सुकता रही कि कब स्पेनिश प्रजातन्त्र खत्म हो; लेकिन उसने तो मिटने से इनकार कर दिया। इससे वे और भी चिढ़े। दरअसल, उसमें तो नयी ताक़त आ गयी मालूम पड़ती थी। इंग्लैण्ड-इटली के समझौते के कारण मि० चेम्बरलेन को इसपर हंसी आती थी। और उनको स्पेन के प्रजातंत्र का खात्मा करने के लिए सब-कुछ करके अपने आपको सही साबित करने में ही अपना सम्मान दीख पड़ा। अगर इंग्लैण्ड के जहाजों को तारपीडो या बमबारी से नष्ट कर दिया जाता था, तो वह इसे भी यह कहकर उचित ही ठहराते थे कि यह तो स्पेन के प्रजातन्त्र की रसद ले जाने का खतरा उठाने का कुदरती नतीजा ही था। स्पेन से सहानुभूति रखने के मामले पर दुनिया में मतभेद था। कट्टर राजभक्ति की भावनाएँ पैदा की गयीं। मि० चेम्बरलेन की राजभक्ति किधर को थी इसमें अब शक नहीं रह गया।

सन्तुष्ट करने की नीति चलती रही। झगड़े का केन्द्र हटकर मध्य यूरोप में आ गया था। हिटलर ने आस्ट्रिया को धमकी दी। मि० चेम्बरलेन ने खुले आम कह दिया—मैं आस्ट्रिया के मामले में दखल नहीं दूंगा। यह हिटलर को न्यौता देना था और वह फौरन स्थिति का लाभ उठाने से न चूका और घुस आया।

चेकोस्लोवाकिया को धमकी दी गयी। वैदेशिक विभाग ने, शायद मि० चेम्बरलेन को भूलकर, हुक्म दिया कि अगर जर्मनी चेकोस्लोवाकिया पर हमला करे तो ब्रिटिश राजदूत को बर्लिन से हटा लिया जाये। चेकों

ने सेनाओ को रातोरात तैयार किया और मार्च १९३८ का सकट टल गया। हिटलर अपनी योजनाओं पर यह रोक लगने पर आगबबूला हुआ। इसी तरह दिखाने को मि० चेम्बरलेन और लार्ड हैलीफैक्स भी हुए। वैदेशिक विभाग ने टुकड़ा खुद अपने दाँतो मे दबा लिया और आराम से चलती हुई सन्तुष्ट करने की नीति में गडबड़ कर दी। यह बर्दाश्त नही किया जा सका और वैदेशिक विभाग के स्थायी अध्यक्ष सर राबर्ट वेन्सिटार्ट को हटाकर उन्हे किसी मामूली ओहदे पर बदल दिया गया। उनकी जगह सर आर्नाल्ड विल्सन को मिली।

सर आर्नाल्ड सन्तुष्ट करने की नीति को प्रोत्साहन देने के लिए उपयुक्त व्यक्ति थे। वह नात्सियो के समर्थक थे और सोवियट के घोर विरोधी। नात्सी जर्मनी की ओर से जो महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली दल इग्लैण्ड मे काम कर रहा था, उससे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। वहाँ क्लाइवडॅन के दल के और 'टाइम्स' के मालिक और सम्पादक और फ्रैंको के समर्थक उत्साही व्यक्ति थे। तादाद में कम होते हुए भी वे सरकार पर हावी थे और मि० नेविल चेम्बरलेन उनके खास लाड़ले थे। इग्लैण्ड की वैदेशिक नीति पर अब फिफ्थ कॉलम का पूरा कब्जा था।

कदम-ब-कदम मध्ययूरप और स्पेन मे यह नीति चल पड़ी। चेको की कमर तोडने और नात्सियो को बढावा देने के लिए लार्ड रन्सिमैन भेजे गये। म्यूनिक आया और सन्तुष्ट करने की नीति की पूरी जीत हो गयी। शान्ति-स्थापना करानेवाले वीर मि० चेम्बरलेन ही थे। चेको-स्लोवाकिया के लाखो घरो मे घोर दु ख छाया हुआ था और बागियो से जेले भरी हुई थी। इन बहादुर लोगो से उन लोगो ने दगा की जिन्हे उन्होने अपना दोस्त समझा था। दुनिया इग्लैण्ड और फ्रास मे

नफरत करने लगी। पश्चिम मे हिटलर को सन्तुष्ट करने और उसे सोवियट पर हमला करने को मजबूर करने की पुरानी नीति सन्तोष-जनक रूप से आगे बढ रही थी लेकिन उसकी उन्हे क्या परवा थी ? सोवियट की अवहेलना की गयी और उसे अलग कर दिया गया। इग्लैण्ड हिटलर का सबसे सच्चा दोस्त बन गया और अगर सब काम ठीक चलता रहा तो कुछ अशो मे फासिज्म, प्रजातन्त्र के बुरके मे ही सही, इग्लैण्ड में भी आ धमकेगा।

लेकिन सब काम ठीक नही चला, हालाकि स्पेन, वह प्रजातन्त्रीय स्पेन जिसने ससार की आजादी की लडाई का बोझ अपने कधो पर उठा लिया था, इग्लैण्ड और फ्रास का छुरा खाकर मरा पडा था। मि० चेम्बरलेन और उनकी सरकार को बडी कीमत चुकानी पडी थी, बडे-बडे खतरे मोल लेने पडे थे और वह घडी आ पहुँची थी जबकि सन्तुष्ट करने की नीति पर डटे रहने का इनाम उन्हे मिलता। वह इनाम था जर्मनी का पच्छिम की तरफ से सन्तुष्ट होकर पूरब को मुडना और रूस के साथ उलझना। लेकिन यह इनाम हटकर दूर चला गया। यूरोप के पूरब और दक्खिन-पूरब मे अब भी ऐसे रसभरे लुकमे मौजूद थे, जिन्हे हिटलर ले सकता था, लेकिन फिर क्या ? अचानक यह साफ हो गया कि जर्मनी का सोवियट-सघ से टक्कर लेने का कोई इरादा नही है। सोवियट के सैनिक तन्त्र के लिए जर्मनी के दिल मे बहुत ज्यादा इज्जत थी और वह सोवियट के विस्तृत प्रदेशो मे उलझ जाना नही चाहता था। ज्यादा आसान यह था कि उन रसीले लुकमो को हडप करके पीठ-पीछे पूर्व का दरवाजा वन्द कर किया जाये और पच्छिम की ओर मुँह फेर लिया जाये।

यह योजना चौकानेवाली थी। सन्तुष्ट करने की नीति की सारी-की-

सारी इमारत डगमगा रही थी। उसकी कीमत न सिर्फ इस तरह चुकानी पडी कि लाखो का खून हुआ और मुसीबते आयी, प्रजातन्त्र की वलि चढ गयी और आदर-प्रतिष्ठा धूल में मिल गयी, वल्कि युद्ध के महत्व-पूर्ण नाके शक्तिशाली दुश्मनों के कब्जे मे चले गये। और वदले मे कुछ भी न मिला। आज इग्लैण्ड और फ्रास के सत्ताधारी लोग वडे रज के साथ चैको-स्लोवाकिया की नष्ट हुई फौजो के साथ स्कोडा के वड़े-वड़े कारखानो का खयाल करते होगे कि जो उनका काम करते, मगर अब दुश्मन के लिए लडाई का सामान तैयार करेगे। जो कुछ उन्होने स्पेन मे किया उसपर वे बहुत-बहुत पछता रहे होगे।

चेक राष्ट्र का आखिरकार खात्मा हो जाना, मैमेल का जर्मनी मे मिल जाना और अलबानिया पर हमला होना—ये घटनाएँ तेजी से एक के वाद एक घटित हुई। इग्लैण्ड मे खतरा वढता ही जा रहा था और टोरी दलवाले तक इसपर गुर्राने लगे और मनाने की नीति के खिलाफ विद्रोह करने की धमकी देने लगे। इस वात की बहुत चर्चा होने लगी कि प्रजातन्त्र खतरे मे है—वही प्रजातन्त्र जिसका इन्ही लोगों ने दो जगह (चैको-स्लोवाकिया और स्पेन में) खात्मा कर दिया था। टोरी दलवालो में अपने प्रजातन्त्र या आजादी के प्रेम के कारण हलचल हुई हो ऐसी बात नही, वल्कि इस डर से हुई कि उनकी सल्तनत छिन न जाये और शायद उन्हीके देश की आजादी हाथ से न चली जाये। वही पुरानी दुविधा अब और जोर के साथ उनके सामने खडी थी कि हम फासिस्टो को रोककर और उन्हे वर्बाद करके अपने साम्राज्य की रक्षा करे या थोडी और रियायते देकर, थोडे और नरम होकर लडाई को हर हालत में टालने और मनाने की नीति अख्तियार करके अपनी समाज-व्यवस्था की हिफाजत करते रह। रियायते तो अवतक दूसरे लोगो के

माल मे से दी जाती रही थी, लेकिन अव तो ऐसा वक्त आ गया था कि अपने जिस्म मे से गोश्त काट-काटकर देना पडे। म्यूनिक मे और उसके वाद जो कुछ हुआ उससे इग्लैण्ड और फ्रास बुरी तरह कमजोर पड गये थे और आगे भी सन्तुष्ट करना जारी रहा तो वे इतने कमजोर हो जायेंगे कि उन्हे टक्कर लेना भी मुश्किल हो जायेगा। हाँ, अकेला रूस ऐसा राष्ट्र था जो उनको वचा सकता था, मगर वह उदास और नाराज था और किसी फदे में नही पडना चाहता था।

यह पास का खतरा इतना वडा था कि उसे कैसे दरगुजर किया जाता? और समाज-व्यवस्था विगड़ने का दूसरा खतरा इससे कम महत्त्व का समझा गया। इस वात की पुकार इग्लैण्ड मे जोरो पर थी कि सन्तुष्ट करने की नीति छोड देनी चाहिए और सोवियट रूस के साथ मिलकर नात्सी जर्मनी और फासिस्ट इटली के खिलाफ एक मजवूत मोर्चा लेना चाहिए। चेम्वरलेन साहव चतुर राजनीतिज्ञ ठहरे, उन्होने इस हवा को देखकर रुख वदला और नीति-परिवर्तन का ऐलान कर दिया। हर जगह खुशियाँ मनायी जानें लगी और ऐसा जान पडा कि एक भयकर परेशानी मिट गयी।

लेकिन क्या चेम्वरलेन साहव ने नीति वदल दी थी? उन्होंनें पोलैण्ड और रूमानिया को ऐसे आश्वासन दे दिये थे कि जो विना सोवियट की सहायता के सफलतापूर्वक पूरे नही हो सकते थे। इसलिए दो में से एक रास्ता था—या तो सोवियट के पास जायें और उनसे समझौता करे, या फिर जव मौका आये, तव आश्वासन को भूल जायें और विश्वासघात करे।

क्या चेम्वरलेन साहव वदल गये थे? यह होने-जैसा न था। वह एक कठोर आदमी है और विदेशी नीति के सम्वन्ध मे उनके विचार

अटल है और मध्य यूरोप और स्पेन मे जो कुछ हुआ उसके बावजूद वह अपनी उस नीति से नही डिगे है। रूस और उसके तमाम सिद्धान्त उन्हे पसन्द नही थे। वे अपनी इस भावना के वश में थे। क्या वह अपनी भावनाओ और धारणाओं को दूर करके अपनी नीति की हार मजूर करते? यह भी बहुत अनहोना था। और उनके पिछले न निभाये गये आश्वासनों और बार-बार बदल जानेवाली उनकी राजनीतिक ईमानदारी में किसी को भरोसा नहीं रह गया था। उन्होंने अपनी नीति मे परिवर्तन करने का ऐलान कर भी दिया था, तो कितने लोग उनका विश्वास करते?

लेकिन उनकी बातो से ज्यादा तो उनकी कारगुजारियाँ ज़ोर-ज़ोर से बोल रही थीं और साफ बता रही थी कि वह अब भी पहले की तरह सन्तुष्ट करने की नीति पर कायम है। अलबानिया की घटना के बाद भी वह इग्लैण्ड व इटली की सन्धि को निभाते रहे। स्पेन का जो भयानक और दु.खद अन्त हुआ और उसके शरणार्थी लोग जिसतरह भूखो मरे वह सब होते हुए भी उनके प्रतिनिधि ने मैड्रिड में होनेवाले फ्रैको के विजयोत्सव मे हाजिरी दी थी। सर नेविल हेन्डरसन, जो सन्तुष्ट करने की नीति के नात्सीभक्त समर्थक थे, वापस अपनी राजदूत की जगह बर्लिन भेज दिये गये, वहाँ उनकी वॉन रिबनट्राप ने तौहीन की, क्योकि उसे उनसे मिलने की फुरसत तक नही थी। लन्दन के 'टाइम्स' ने अपने शरारत भरे ढग से यह सुझाया कि डाज़िग कोई ऐसी जगह नही है कि जिसके लिए लड़ाई लड़ी जाये, इसलिए जैसा कि पिछले साल सुडेटनलैण्ड में हुआ, जर्मनी को जाकर उसपर कब्जा करना चाहिए। 'टाइम्स' इस बात के लिए बदनाम है कि ऐसे मामलो में वह मि० चेम्बरलेन और लार्ड हैलीफेक्स का प्रतिनिधित्व करता है। कामन-

सभा मे चेम्बरलेन साहब इस बात का आश्वासन देने से इनकार कर देते है कि वह बोहेमिया और मोरेविया की विजय को स्वीकार नही करेगे। अखबारो में बड़ी सूझवाली खबरें छपती है कि दूसरा म्यूनिक होनेवाला है। फिफ्थ कालम फिर से जोरो से काम कर रहा है और युद्ध करने की नीति का बोलबाला है।

इसी बीच खतरे की भावना का फायदा उठाते हुए मि० चेम्बरलेन ने सेना की अनिवार्य भर्ती शुरू कर दी है। इसका असली मतलब क्या है? एक अंग्रेज सेनापति ने हाल मे ही यह कहा था कि इंग्लैण्ड के विरोधी लोगो को दबाने के लिए ऐसी फौजी भर्ती बहुत फायदेमन्द है। लड़ाई की तैयारियों के बुर्के में चेम्बरलेन साहब इग्लैण्ड मे अन्दरूनी फासिज्म के रास्ते पर जा रहे है और मुमकिन है कि उनको कामयाबी मिल जाये। अखबारो पर सेंसर बैठ जायेगा, उनपर कड़ी देखरेख हो जायेगी और सार्वजनिक जीवन पर पाबन्दियाँ लगादी जायेगी। इग्लैण्ड में फासिज्म के समर्थक लोग लडाई मे हार जाना तक मजूर कर लेगे, मगर 'सोवियट संघ' और दूसरे प्रगतिशील राष्ट्रों से मिलना पसन्द न करेगे। यह नीति है जिसपर चलने पर चेम्बरलेन साहब उतारू हैं और दरअसल चल रहे है।

लेकिन इग्लैण्ड में एक ऐसा शक्तिशाली दल है और उसमे टोरी पार्टी के कुछ नेता शामिल है जो इस नीति के खिलाफ है और नात्सी जर्मनी से लड़नें के लिए सोवियट से मित्रता कर लेना चाहते है। मि० चेम्बरलेन को उन्हे भी तसल्ली देनी है, और इस मकसद के लिए वह सोवियट से बातचीत चलाते है। उन्होने रूस के आगे जो सुझाव रखे वे बड़ी खूबी के और किसी की पकड़ मे न आने-जैसे थे। रूस ने इनकार कर दिया और सारे हमलो के खिलाफ एक वास्तविक सधि का प्रस्ताव किया। अगर

मि० चेम्बरलेन आक्रमणो को रोकने के लिए सचमुच चिन्तित होते तो ऐसी सधि को मजूर करने मे उनको कोई दिक्कत नही होनी चाहिए थी लेकिन उन्हे ऐसी कोई चिन्ता थी ही नही । उनकी तो सारी ताकत इस मकसद के लिए लग रही थी कि फासिज्म के लिए दुनिया निष्कटक हो जाये और इग्लैण्ड फासिस्ट देशो के साथ हो जाये।

यह हो सकता है कि घटनाओ और उनके ही लोगों के दबाव से मजबूर होकर वह सोवियट के साथ शर्ते करे, लेकिन इतने पर भी उनका विश्वास करे कौन ? वह अपनी सतुष्ट करने की परमप्रिय नीति को नही छोडेगे और पहले की तरह अपने दोस्तों और साथियो को धोका देगे। भले ही युद्ध छिड जाये और मि० चेम्बरलेन के नेतृत्व मे इग्लैण्ड को उसमें पड़ना भी पडे, तो भी इस बात का निश्चय नही है कि सन्तुष्ट करने की नीति का अन्त हो जायेगा। उस युद्ध मे म्यूनिक भी आ सकता है। कुछेक लायक दूरदर्शियो का मत है कि बहुत ज्यादा मुमकिन है कि कुछ हफ्तो के नरसहार के बाद जब कि लोगो की नसे ढीली पड जाये, मि० चेम्बरलेन से कोई फायदे की पृथक् सधि करनें के लिए कहा जाये और वह शायद मजूर कर ले जिससे देश मे और विदेश मे फासिज्म सुरक्षित रहे। लडाई से अन्दरूनी फ़ासिज्म के साज-सामान जमाने मे मदद मिलेगी।

आज फ्रास मे फौजी डिक्टेटरशाही (अधिनायकत्व) का राज है और चेम्बर ऑव डिप्टीज की कोई ज्यादा कीमत नही है। जनतन्त्रात्मक आजादी की चद बाते बनी रहने दीगयी है, लेकिन वे भी अधिकारियो की महरबानी पर है। वह फ्रास, जिसने एक दिन स्पेन के प्रजातन्त्र को अस्त्र-शस्त्र तो क्या खाना तक देने से इनकार कर दिया था, आज फ्रेको के पास हथियार-पर-हथियार भेज रहा है। वे सब-के-सब हथियार जिन्हे

प्रजातन्त्र की फौजे फ्रास मे छोड गयी थी, फ्रैंको को दिये जा रहे है। वह स्पेन का सोना भी, जो पेरिस मे था और प्रजातन्त्र को नही दिया गया था, फ्रैंको को सौपा जा रहा है और फ्रैंको का ताल्लुक रोम-बर्लिन धुरी से है । क्या यह सन्तुष्ट करने की नीति का परित्याग है ? क्या जनतन्त्रात्मक ढग पर शान्ति का मोर्चा तैयार करने का यही तरीका है ?

यह बात हमारे दिमाग मे साफ होजाये। सन्तुष्ट करने की वही पुरानी नीति जारी है और वही पुरानी धोखेबाजियाँ अब भी चलती रहेंगी क्योकि इग्लैण्ड और फ्रास पर हुकूमत करनेवालो के दिमाग मे दूसरा कोई डर इतना ज्यादा नही है जितना सामाजिक परिवर्तन होने का डर है। जबतक चेम्बरलेन साहब के हाथ मे ताकत है, तबतक कोई खास तब्दीली होनेवाली नही है और घटनाएँ उनको तब्दीलियाँ करने को मजबूर करे तो भी वह अपने पुराने तरीके से ही पीछे लगे रहेगे और जब मौका मिलेगा तब उनपर चलने लगेगे।

लेकिन इग्लैण्ड के शासकवर्ग के दिमागो मे भी यह दुविधा है कि हम फासिस्ट हमलो को रोककर और फासिज्म को बर्बाद करके अपने साम्राज्य की रक्षा करे या थोडी और रियायते दे-दिलाकर थोडे और नरम हो-हाकर लडाई को हर तरह से टालने और सन्तुष्ट करने की नीति अख्तियार करके अपनी समाज-व्यवस्था की हिफाज़त करले। इसके जवाब मे मि० चेम्बरलेन को कोई शक नही है। वह तो समाज-व्यवस्था और फासिज्म पर अडे हुए है।

हम हिन्दुस्तानियो के लिए ऐसी कोई दुविधा नही है, क्योकि हम उस सल्तनत और उस समाज-व्यवस्था दोनो का अन्त चाहते है। और इस-लिए, चाहे लडाई अभी शुरू हो चाहे देर मे, हम उसमे हिस्सा नही ले

सकते, बशर्ते कि हमको स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाये और स्वतन्त्रतापूर्वक वास्तविक जनसत्ता और शान्ति चाहने का अधिकारी समझ लिया जाये। मि० चेम्बरलेन के नेतृत्व या अंग्रेजी साम्राज्यवाद के चंगुल में रहकर न तो जनसत्ता मिल सकती है, न शान्ति। वह रास्ता तो फासिज्म और जनतन्त्र के साथ विश्वासघात करने का है। वह रास्ता तो भारत के अधिकाधिक शोषण और उसे अपमानित करनें का ही है।

यह भाग्य का एक व्यंग है कि फासिज्म में विश्वास रखते हुए भी और जनतन्त्र का शायद किसी भी व्यक्ति से अधिक नुकसान करनेवाले होते हुए भी आज मि० नेविल चेम्बरलेन अंग्रेज़ी प्रजातन्त्र के नेता बनते हैं, मो० दलँदिये फ्रांस के डिक्टेटर हैं और लार्ड हैलीफैक्स और नात्सी-भक्त मो० बोनेट इंग्लैण्ड और फ्रांस के वैदेशिक मंत्री हैं। क्या इन्हीं लोगों से जनतन्त्रवाद प्रेरणा पायेगा या मोक्ष की आशा करेगा? रूज़-वेल्ट जैसी महान् जनतन्त्रात्मक मूर्ति के आगे ये सब लोग कितने नगण्य लगते हैं।

लेकिन जनतन्त्र के इन ढोंगी मसीहाओं के भुलावे में हम न आवें। हमारे लिए तो जनसत्ता का अर्थ है—हमारी जनता की आज़ादी। यही हमारी कड़ी कसौटी है।

३१ मई, १९३९

: ६ :

युद्ध और शान्ति के ध्येय

१

काग्रेस की कार्य-समिति ने जो वक्तव्य दिया है, उससे जनता का ध्यान युद्ध-स्थिति के कुछ पहलुओ की तरफ गया है। दुख के साथ कहना पडता है कि उन्हे दरगुजर किया गया था। एक तरफ तो यह मनोवृत्ति थी कि बिना किसी विचार, ध्येय या उद्देश्य के हिन्दुस्तान के लडाई मे कूद पडने की बात की जाती थी और दूसरी तरफ कहा जाता था कि लडाई का बिना सोचे-समझे प्रतिरोध होना चाहिए। ये दोनो रुख निषेधात्मक रुख थे, और इनमे न तो मौजूदा स्थिति की असलियत पर और न दुनिया और हिन्दुस्तान में हो चुके बहुत-से रद्दोबदल पर ध्यान दिया गया था। दोनो मे से एक भी रुख रचनात्मक राजनीतिज्ञता का नही था। अपने इस रचनात्मक मार्ग-दर्शन से कार्यसमिति ने राष्ट्र की महान् सेवा की है। वह सेवा हिन्दुस्तान की ही नही है बल्कि उन सबकी भी है जो स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और नयी व्यवस्था की बात सोचते है और ऐसे लोगो की तादाद आज दुनिया मे बहुत ज्यादा है। परिणामस्वरूप कार्य-समिति ने दुनियाभर की प्रगतिशील शक्तियो का नेतृत्व किया है। हम नही जानते कि हिन्दुस्तान की यह आवाज़ लडाई के और सम्पर्क बनाये रखने की कठिनाई के इन दिनो मे कितनी दूर पहुँचेगी और हिन्दुस्तान के बाहर कितने लोग उसे सुनेगे? लेकिन हमे यकीन है कि जिनतक यह आवाज़ पहुँचेगी वे इसका स्वागत ही करेगे

और इस बात का समर्थन करेंगे कि युद्ध और शान्ति के ध्येयो की स्पष्ट व्याख्या हो जानी चाहिए ।

कार्यसमिति के प्रस्ताव मे जरूरी तौर कुछ उसूलो पर विचार किया गया है । मगर इन सिद्धान्तो को स्थूल रूप मे देना होगा और हमको यह मुनासिब मालूम होता है कि इस मामले पर सार्वजनिक विचार होना चाहिए । इस विकट सकट में हममे से कोई भी विरोध द्वारा या कोरे नारे लगाकर बच नही सकता, चाहे उनकी आवाज़ कितनी ही भली क्यो न लगती हो । अगर उन नारो का असलियत से कोई सम्बन्ध है तो वे वर्तमान परिस्थिति मे अमल मे आने लायक होने चाहिएँ । उसी अमल के लिए हमे अपनी ओर मुखातिब होना चाहिए । हो सकता है हमारी कोशिशें बेकार रहे और वह अमल आज न हो सके । भूतकाल की विरासत और इस ज़माने की जोरदार माँग से हम सघर्ष और उसके तमाम बदकिस्मत नतीजों की ओर बढते जा रहे है । यह हिन्दुस्तान और दुनिया के लिए दुर्भाग्य की बात होगी, खासतौर से इस वक्त जबकि दुनिया भर के लोगो के दमन और अत्याचार और शोषण से छुटकारा दिलाने के लिए निडर राजनेतृत्व की माँग है । रास्ता मुश्किल है । फिर भी रास्ता तो है ही भले ही रुकावटे बहुत-सी है और सब-की-सब हमारे हाथो पैदा नही हुई है पर एक दरवाजा भी है जिसमे होकर हम भविष्य के बाग मे जा सकते है; लेकिन उस दरवाजे पर बेवकूफी का, पुराने ज़माने के विशेषाधिकारो का और स्थापित स्वार्थों का पहरा लग रहा है ।

युद्ध के और शान्ति के उद्देश्यों पर विचार करने से पहले हम यह स्पष्ट कर दे कि इस समस्या पर हम किस तरह से विचार करेगे ? हिन्दुस्तान के लिए आज लडाई एक दूर की बात है, वह काफी भडकानेवाली चीज़

है लेकिन हमसे कुछ अलग है। हमपर उसका असर पडता ही नही। यूरप मे और दूसरी जगह ऐसा नही है क्योकि वहाँ तो वह लडाई असख्य लोगो के लिए एक लगातार दुख और मुसीबत के रूप मे है, सर पर मँडरानेवाला खतरा है, मौत है, बरबादी है और दिल को तोड डालनेवाला तनाव है। यूरप में एक भी घर ऐसा नही है जो इस दिल को दहलानेवाली घबराहट और पस्तहिम्मती से बचा हुआ हो, क्योकि जिस दुनिया को वे जानते है, उसी का अन्त आगया है और उनपर खौफ छा गया है—ऐसा खौफ कि जिसकी उनके, उनके प्रियजनो और उस सबके लिए कि जिसका मूल्य उनके लिए बहुत रहा है, कोई हद नही है। बहादुर आदमी और औरते उन तात्त्विक शक्तियो के हाथ के मोहरे बने हुए है जिन्हे वे काबू में नही रख सकते। वे इस मसले का दिलेरी के साथ मुकाबिला करते है, लेकिन जिस एकमात्र आशा से उनके मन थोडी देर के लिए चमक उठते है, वह है दुनिया के एक बेहतरीन भविष्य की आशा, ताकि उनके त्याग और बलिदान बेकार न चले जायें।

हम इन जुदा-जुदा मुल्को के रहनेवालो के बारे मे, चाहे वह पोलैंड हो या फ्रास हो या इग्लैण्ड हो या रूस हो या जर्मनी हो, इज्जत और पूरी हमदर्दी के साथ खयाल करे, उनकी मुसीबत का मजाक उडाने की कल्पना न करे, या बे-सोचे-समझे ऐसा कुछ न कहे जिससे उन लोगो को चोट लगे, जिन्हे वह भारी बोझ उठाना है। इग्लैण्ड से हमारा पुराना झगडा चला आता है, हालाँकि वहाँ के लोगो से नही। हमे आज़ादी मिल जाये, तो उसके साथ वह झगडा भी खत्म हो जायेगा। तभी हम इग्लैण्ड के साथ बराबरी की शर्त पर दोस्ती कर सकते है। लेकिन दूसरे देशो की तरह अग्रेज़ो के साथ भी उनकी मौजूदा मुसीबत में

हमारी सहानुभूति और सद्भावना ही है। हम यह भी जानते है कि उनकी साम्राज्यवादी सरकार ने चाहे कुछ भी किया हो, या आगे करे, अग्रेजों मे आज भी आजादी और प्रजातन्त्र के लिए बडी हमदर्दी है। इन्ही आदर्शो के लिए वे लडते है। यही आदर्श हमारे भी है, हालाँकि हमे डर है कि सरकारें अपने शब्दो और कथनो को झूठा कर सकती है। दुनिया के बहुत से हिस्सो मे, खासकर हिन्दुस्तान में, अब भी साम्राज्यवाद का बोलबाला है। फिर भी १९३९ कोई १९१४ नही है। इन पच्चीस बरसो मे दुनिया में और हिन्दुस्तान में बड़ी-बडी तब्दीलियाँ हो चुकी है—तब्दीलियाँ जिन्होने बाहरी ढाँचे को उतना ही पलटा है जितना कि लोगो के दिमागो को पलटा है और उनमे इच्छा पैदा कर दी है कि इस बाहरी ढाँचे को बदलकर उस व्यवस्था का खात्मा कर दे जिसकी बुनियाद हिंसा और सघर्ष पर है।

हिन्दुस्तान में भी सन् १४ मे हम जैसे थे, उससे अब बहुत बदल चुके है। हममें ताकत आ गयी है, और आ गयी है राजनीतिक सजगता और मिलकर काम करने की ताकत। अपनी बहुत-सी मुश्किलो और समस्याओ के बावजूद आज हमारा राष्ट्र कमजोर नही है। हम जो कहते है उसकी अन्तर्राष्ट्रीय मामलो तक में कुछ हदतक कीमत है। अगर हम आजाद होते तो शायद इस लडाई को रोकने तक मे कामयाब हो गये होते। कभी-कभी हमारे सामने आयरलैण्ड की मिसाल रखी जाती है। यह ठीक है कि आयरलैंड और उसकी आजादी की जद्दोजहद से हम बहुत-कुछ सीख सकते है, पर हमे यह याद रखना चाहिए कि हमारी हालत जुदा है। आयरलैण्ड तो एक छोटा-सा मुल्क है, जो भौगोलिक और आर्थिक रूप से इग्लैण्ड से बँधा हुआ है। आयरलैण्ड आजाद हो तो भी वह दुनिया के मामलों में कोई ज्यादा फर्क नही पैदा कर सकता। हिन्दुस्तान

के साथ यह बात नही है। आजाद हिन्दुस्तान अपने बडे-बडे साधनो के के कारण दुनिया और मानव-जाति की बडी भारी सेवा कर सकता है। हिन्दुस्तान हमेशा दुनिया को बदलनेवाला मुल्क रहेगा। तकदीर ने हम बडी चीजो के लिए बनाया है। जब हम गिरते है, तो नीचे गिर जाते है; जब हम ऊपर उठते है तो लाजिमी तौर से दुनिया के नाटक मे भाग लेते है।

जैसा कि कार्यसमिति ने कहा है, यह लडाई उन सब तरहके विरोधो और सघर्षो की उपज है जो मौजूदा राजनैतिक और आर्थिक ढाँचे मे पाये जाते है। लेकिन लडाई का तात्कालिक कारण तो फासिज्म और नात्सीवाद की तरक्की और उसके हमले है। जबसे नात्सी जर्मनी का जन्म हुआ है, तबसे काग्रेस ने सच्ची गहरी निगाह से देखकर फासिज्म की निन्दा की है और उसने देखा है कि साम्राज्यवाद के उसूल ही घने होकर फासिज्म बन गये है। काग्रेस में लगातार जो प्रस्ताव हुए है उनसे इस फैसले का सबूत मिलता है। इसलिए यह साफ है कि हमें फासिज्म का विरोध करना चाहिए और उसपर विजय पाना हमारी भी विजय होगी। लेकिन हमारे लिए इस विजय का मतलब केवल यह होगा कि साम्राज्यवाद का ज्यादा विस्तार होगा। अपनी आजादी और उसे पाने की कश्मकश को तिलाजलि देकर हम फासिज्म के ऊपर विजय नही पा सकते।

अगर हम बाजारू तरीके से सौदा करेगे तो उसमें न तो हमारा मकसद ही पूरा होगा न विश्वव्यापी सकट के वक्त वह हिन्दुस्तान की शान के लायक ही होगा। हमारी आजादी इतनी कीमती है कि उसके लिए सौदा नही किया जा सकता। बल्कि दुनिया के टेढे रास्ते पर जाने की वजह से भी उसकी कीमत इतनी ज्यादा है कि उसे दरगुजर किया या एक तरफ डाला नही जा सकता। दुनिया भर की जिस आजादी की

घोषणा की जा रही है, उसका आधार और नीव ही यह आजादी है। अगर उस आजादी के लिए संयुक्त प्रयत्न करने मे हमे हिस्सा लेना है, तो वह प्रयत्न वास्तव मे मिलकर ही होना चाहिए, और उसका आधार स्वतत्र और बराबरवालो की रजामंदी पर होना चाहिए, नही तो उसका कोई मतलब न होगा, कोई कीमत न होगी। लडाई मे जीत होने के खयाल से भी यह महत्त्व की बात है कि आजादी के साथ मिलकर लड़ाई में शामिल हुआ जाये। लडाई से जिन उद्देश्यो का पूरा होना माना जाता है उनके व्यापक दृष्टिकोण से भी हमारी आजादी जरूरी चीज है।

हम समझते है कि युद्ध और शान्ति के ध्येयो की समस्या पर किसी तरह का विचार करने की पृष्ठभूमि यही है।

२१ सितम्बर, १९३९.

२

लडाई का अजाम क्या होगा ? वह कबतक चलती रहेगी ? सोवियट रूस क्या करेगा ? क्या पोलैण्ड को कुचलने के बाद हिटलर सुलह चाहेगा ? इन और इन जैसे दूसरे सवालों का जवाब देने का हम दावा नही करते, और जो जवाब देने की कोशिश करते है, उन्हे शायद वैसा करना मुनासिब नही है। मगर हमारा यकीन है कि अगर यह लडाई आधुनिक सभ्यता का सत्यानाश नही करती, तो वह इन मौजूदा राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था मे रद्दोबदल तो ला ही देगी। लडाई के बाद पुराने तरीकों पर साम्राज्य और साम्राज्यवाद चले इसकी हम कल्पना नही कर सकते।

दुनिया की जो स्थिति है उसमे इस वक्त सोवियट रूस का हिस्सा बडा रहस्यभरा है। यह तो साफ है कि रूस जो कुछ भी करेगा, उसके

परिणाम महत्त्वपूर्ण और दूरगामी होगे। लेकिन चूँकि हम नही जानते कि वह क्या करेगा, इसलिए अपने मौजूदा हिसाब में से उसे छोड देते है। रूस और जर्मनी के बीच जो समझौता हुआ, उससे बहुतो को धक्का लगा और अचरज हुआ। जिस तरीके से समझौता किया गया और उसके लिए जो मौका चुना गया, उसे छोडकर उसमे कोई बात अचरज की नही थी। किसी दूसरे वक्त रूस की विदेशी नीति के साथ वह कुदरतन् मेल खा सकता था। लेकिन इसमें शक नही कि उस खास अवसर पर उससे रूस के बहुत से दोस्तो को अचम्भा हुआ। ऐसा लगा कि उसमें उसकी बहुत बडी ज्यादती, शरारत और मौके से फायदा उठाने की वृत्ति थी। यह आलोचना हिटलर पर भी लागू होती थी, जिसने रातो-रात अपना उग्र साम्यवाद-विरोध छोड दिया और जाहिरा तौर पर रूस के साथ दोस्ती कर ली। एक शरारती आदमी ने ताने के साथ कहा कि रूस ने कॉमिन्टर्न-विरोधी समझौता कर लिया है, दूसरे ने कहा कि हिटलर साम्यवादी और यहूदियो का हामी होता जा रहा है। यह सब हमको वाहियात मालूम होता है, क्योकि हिटलर और स्टेलिन के बीच कोई असली समझौता नही हो सकता और न होने जा रहा है। बल्कि दोनों सत्ताधारी राजनीति के खेल खेलना चाहते है। रूस ने इग्लैण्ड के हाथो इतनी बेइज्जती सही है कि वह इसकी कडी मुखालफत करेगा ही।

सोवियट के पूर्वी पौलेण्ड में घुस आने से एक धक्का और लगा, लेकिन अभी यह कहना मुश्किल है कि आया ऐसा जर्मन फौज का मुकाबिला करने के लिए या पौलेण्डवालो को कमजोर करने के लिए या एक राष्ट्रवादी दृष्टि-बिन्दु से किसी खास मौके से फायदा उठाने के लिए हुआ था। बहरहाल जो थोडी-बहुत खबर हमे मिली है, उससे पता चलता है कि रूस के पोलैण्ड मे बढने से निश्चित ही जर्मनी के इरादो मे रुकावट हुई है। उससे जर्मनी

के पूर्वी पौलेण्ड को ले लेने में भी रोक लगी और जर्मन फौज को रुकना पड़ा। इससे भी ज्यादा महत्त्व की बात सोवियट फौज का पालिश रूमानियन सीमा को ले लेना है। इससे यह निश्चित हो गया है कि जर्मनी रूमानिया के तेल के इलाकों पर कब्जा नही कर सकता कि जिसपर उसकी घात थी और शायद रूमानिया की गेहूँ की भारी रसद भी नही हथिया सकता। वाल्कन राज्य जर्मनी के हमले से वच गये है और तुर्की ने तसल्ली की साँस ली है। भले ही आज इस सवका मतलव कुछ न हो; लेकिन आयन्दा ज्यो-ज्यों लडाई आगे वढ़ेगी, त्यो-त्यों इसका वहुत ही महत्त्व होता जायेगा। इस तरह सोवियट रूस ने पश्चिमी मित्र-राष्ट्रों के काम में भारी मदद की है और वर्नार्ड शॉ के इस कथन मे कुछ सचाई है कि स्टालिन ने हिटलर को अपने हाथ की कठपुतली वना लिया है।

हेर हिटलर ने अपने डान्जिग के भाषण मे डराया है कि उसके पास एक भयकर गुप्त हथियार है और अगर स्थिति ने मजवूर किया तो वह भले ही वह कितना ही हैवानियत भरा हो उसे इस्तेमाल करने मे नही हिचकिचायेगा। कोई नही जानता कि यह अनोखी भयंकर चीज़ क्या है ? मौत की फाँस है या वैसी ही कोई चीज़ ? हो सकता है कि यह कोरी डीग ही हो। हरेक ताकतवर राष्ट्र के शस्त्रागारों मे आज मानवजाति के लिए काफी भयंकर अस्त्र-शस्त्र है, और ज्यो-ज्यो लडाई वढ़ेगी, त्यो-त्यो उस भयंकरता मे भी वढती होगी और विज्ञान की सारी शक्तियाँ युद्ध की न वुझनेवाली खूनी प्यास को वुझाने के लिए जुटायी गयी है। हम नही कह सकते कि इस भयानक चढ़ा-ऊपरी में किस पक्ष को लाभ रहेगा ?

काफी सहार करनेवाले और वर्वादी ढानेवाले होते हुए भी हवाई जहाज़ अवतक एक महत्त्वपूर्ण चीज़ नही रहे, जैसा कि कुछ लोग उम्मीद

रखते थे। शायद अभी हमनें इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता देखा नही है। लेकिन स्पेन और चीन में जो अनुभव हुआ है, उससे और हवाई जहाजो के हमले से बचाव के साधनो मे जो उन्नति हुई है उससे पता चलता है कि हवाई अस्त्र निपटारा करनेवाली चीज न होगें।

कहा जाता है इस बात का मौका है कि शायद हिटलर अपने पोलैण्ड की लडाई खत्म होजाने के बाद सुलह करने की कोशिश करे या मुसोलिनी इस बारे मे उसकी तरफ से कुछ करे। लेकिन शान्ति तब भी नही होगी, क्योकि शाति का मतलब तो है हिटलर की जीत होना और उसकी ताकत के आगे इग्लैण्ड और फ्रास का झुकआना और इग्लैण्ड या फ्रास में संतुष्ट करने की नीति के कुछ हामी भले ही हो, लेकिन वहाँ के लोगो का स्वभाव उन्हें वैसा करने न देगा। कुछ-कुछ सम्भावना इस बात की भी है कि जर्मनी मे अन्दरूनी कठिनाई उठ खडी हो जो लडाई को जल्दी खत्म करा दे। लेकिन युद्ध की इस शुरू की अवस्था में उसके आसरे रहना भी खतरे से खाली नही है। इसलिए ऐसा दीखता है कि लडाई लम्बी, दो-तीन बरस तक, चलेगी।

इस लडाई में बहुत ज्यादा अनिश्चित बाते है जिनकी वजह से कोई भविष्यवाणी नही की जा सकती। लेकिन फिर भी आदमी के दिमाग को आगे देखना चाहिए और भविष्य के परदे मे झाँकने की कोशिश करनी चाहिए। भविष्य तो यही बताता दीखता है कि लडाई का क्षेत्र बढेगा और अधिक-से-अधिक राष्ट्र उसमे खिंच आवेगे। फलस्वरूप यह युद्ध विश्व-व्यापी युद्ध हो जायेगा, जिसमे तटस्थ रहनेवाले देशो की कोई गिनती न होगी और बरबादी ढाता हुआ, हत्याएँ करता हुआ, दुनिया को उजाडता और मिटाता हुआ साल पर साल यह युद्ध चलता रहेगा, और तब युद्ध से जर्जर मानव-जाति को समझ आयेगी और वह

उसके खिलाफ बगावत करके उसका अन्त करेगी।

इस लम्बी लड़ाई मे फायदे सभी पश्चिमी मित्र-राष्ट्रो को है। उनके आर्थिक साधन जर्मनी की बनिस्बत कहीं बढ़े-चढ़े है और वे दुनिया के बहुत बडे हिस्से पर निर्भर रह सकेगे। जर्मनी के पनडुब्बिया जहाजो की हलचलों और हवाई जहाजो के साधनों के बावजूद समुद्री रास्ते सब करीब-करीब उन्ही के क़ब्ज़े में है। अमरीका, एशिया और अफ्रीका उन्हे बहुत-सी ज़रूरत की चीज़े दे देगे, जबकि जर्मनी के साधन जुटाने के स्रोत तो बहुत थोड़े-से है। सोवियट रूस क्या करेगा, फ़िलहाल हम छोड़ देते हैं। सैनिक और आर्थिक दृष्टि से उसका भारी महत्त्व हो सकता है, लेकिन यह तो हम बहुत ही अनहोनी बात दिखायी देती है कि रूस नात्सी जर्मनी को मदद दे।

दूसरे देश अगर लड़ाई में शरीक हुए तो सिर्फ इटली और जापान के ही जर्मनी के साथ होने की सम्भावना है। रूस कुछ हद तक जापान की फौजी तैयारियाँ रोक देगा। चीन पर अपने हमले के सबब से वह संजीदा होगया है। इटली का भूमध्यसागर मे महत्त्व होगा; लेकिन खास नही। एक तटस्थ देश रहकर और खाने की व दूसरी ज़रूरत की चीज़े भेजकर और इस तरह नाकेबन्दी को तोड़कर जर्मनी के लिए वह ज्यादा फायदेमन्द भी हो सकता है। कुछ भी हो, इंग्लैण्ड और फ्रास के खिलाफ लड़ाई इटली में बहुत पसन्द नही की जायेगी। कहा जाता है कि सिन्योर मुसोलिनी का हेर हिटलर से जो प्रेम था वह भी हल्का पड़ गया है। फिर भी इटली का जर्मनी से मिल जाना मुमकिन है।

अगर संयुक्तराज्य अमरीका पश्चिमी मित्र-राष्ट्रों से मिल गया तो उनको बहुत ज्यादा ताकत हासिल हो जायेगी। फिलहाल तो संयुक्त-राज्य की मनोवृत्ति तटस्थ रहने की है; लेकिन उससे बढ़ी-चढी तो

उसकी हिटलर-नात्सी-विरोधी भावना है। किसी भी हालत में अमरीका हिटलर की जीत होना बर्दाश्त नही कर सकता। इसलिए बहुत मुमकिन है कि लडाई की बाद की स्थिति मे सयुक्तराज्य इग्लैण्ड और फ्रास के साथ शरीक होजाये। शरीक होने से पहले वह उनकी लडाई की जरूरतो को पूरा करके उनकी मदद करेगा जैसा कि पिछली लडाई में किया था। इस मदद से ही लडाई मे शरीक होने के लिए उसे मजबूर होना पडेगा।

इस लडाई के और विरोधी साम्राज्यवादो की टक्कर के बुनियादी कारण कुछ भी हो, आखिरी कारण तो नात्सियो का हमला था। पिछले अठारह महीनो से मध्ययूरप मे जो नात्सी आक्रमण बराबर चल रहा है, उसने नात्सी आक्रमण के खिलाफ दुनिया भर के ज्यादातर लोगों के खयाल खराब कर दिये है। उनकी निगाह में नात्सी आक्रमण अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे बुराई का पुतला है। पश्चिमी मित्र-राष्ट्रो के हक मे यह एक बड़ी जोरदार मनोवैज्ञानिक बात है। जर्मनी की अन्दरूनी कठिनाइयो की जो हाल मे ही खबरे मिली है, उनमे अतिशयोक्ति हो सकती है, लेकिन ऐसी कठिनाई का होना हमेशा मुमकिन है, खासतौर से उस हालत में जबकि लड़ाई आगे खिचती चले और उससे लोगो पर बोझ और मुसीबतें बढती जायें। यह तै है कि बोहेमिया, मोरेविया और शायद स्लोवाकिया मे बराबर मुश्किल बनी रहेगी। चेको-स्लोवाकिया के लोग जो कि अपने दोस्तो के विश्वासघात की वजह से आसानी से हरा दिये गये, अब अपना बदला ले लेगे।

इस सबसे पता चलता है कि इस लम्बी लड़ाई में—और उसके लम्बी होने की सम्भावना है—तराजू का पलडा पश्चिमी मित्र-राष्ट्रो की तरफ बहुत झुका रहेगा। लेकिन यह लाभ उनके हक मे तभी रहेगा जब

उनके युद्ध और शान्ति के ध्येय स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय हो जिससे कि दुनिया के राष्ट्र इस बात को जान ले और विश्वास करलें कि जिन उद्देश्यो के लिए वे इतनी भारी कीमत दे रहे है वे इस लायक है। साम्राज्यवाद को जारी रखने के लिए वे नही लडेंगे, न बलिदान देंगे। इसका अन्तिम निर्णय तो दुनिया के हाथो होगा, न कि उन सरकारों के हाथो जो अबतक उन्हे गलत रास्ते पर लेगयी है। अगर सरकारे उनकी मर्जी के अनुसार नहीं चलेगी तो उन्हे रुखसत होना होगा और उनकी जगह दूसरी सरकारे आवेंगी।

२१ सितम्बर, १९३९.

३

पश्चिमी मित्र-राष्ट्रों के बताये हुए युद्ध के ध्येय क्या है? हमसे कहा गया है कि वे प्रजातन्त्र और आजादी लाने, नात्सी शासन और हिटलरशाही का अन्त करने और पोलैण्ड को मुक्त कराने के लिए लड रहे है। मि० चेम्बरलेन नें अब इतना और कह दिया है कि चेकोस्लोवाकिया को भी स्वतन्त्र किया जायेगा। माना, लेकिन यही सब काफी नही है। तभी तो कार्य-समिति ने जो ब्रिटिश सरकार से युद्ध और शान्ति के ध्येय पूरे तौर पर बगैर किसी लाग-लपेट के बता देने को कहा है, वह महत्त्वपूर्ण है।

अपनी दलील को हम और आगे लेजायें। अगर हिटलरशाही का अन्त होना है, तो उससे जरूरी तौर पर यह नतीजा निकलता है कि किसी भी फासिस्ट सत्ता से—जर्मनी को छोड़कर और किसीसे भी—कोई सुलह या समझौता नही होना चाहिए। इसका मतलब यह है कि जापानियो और इटेलियनो के हमले को हमे मजूर नही करना

चाहिए और हमारी नीति यह होनी चाहिए कि चीन को हम उसकी आज़ादी की लडाई मे जितनी मदद पहुँचा सके पहुँचाये। इसका मतलव यह भी है कि हमारी जो नीति फासिज्म पर लागू होती है, वही साम्राज्यवाद पर भी लागू होनी चाहिए और इन दोनो का खात्मा कर देना चाहिए! हर हालत में, अन्तर्राष्ट्रीय रद्दोवदल के अलावा भी हिन्दुस्तान को आज़ाद और खुदमुख्तार होना चाहिए। लेकिन फिलहाल हिन्दुस्तान की आज़ादी पर हम विश्वव्यापी साम्राज्यवाद के सिलसिले में विचार करते है। एक तरफ फासिज्म की निन्दा करके दूसरी तरफ साम्राज्यवाद की हिमायत करने या उसे कायम रखने की कोशिश करना तो वेतुका और वाहियात है। वह दुनिया, जिसमें कि फासिज्म का काफी बोलवाला रहा है, साम्राज्यवाद को वर्दाश्त नही कर सकती। इसलिए फासिज्म के खिलाफ लडाई का लाजिमी नतीजा यह होगा कि साम्राज्य-वाद का भी खात्मा होना चाहिए, नही तो उस लडाई का सारा-का-सारा उद्देश्य ही गडवडा जाता है और वह कई प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादो की ताकत हासिल करने का झगडा वन जायेगी।

इस तरह लडाई के ध्येयों के स्पष्टीकरण मे नीचे लिखी वाते होनी चाहिएँ हिटलर ने जो देश ले लिये है उनका छुटकारा, नात्सी शासन का खात्मा, फासिस्ट सत्ता के साथ किसी तरह का सुलह या समझौता न होना, साम्राज्यवादी ढाँचे का खात्मा करके प्रजातन्त्र और आज़ादी लाना और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर अमल होना। वेशक गुप्त सधियाँ नही होनी चाहिएँ, न दूसरे देशो को जीतना, न मुआवजे और न औपनि-वेशिक क्षेत्रो पर सौदा ही होना चाहिए। उपनिवेशो मे भी आत्मनिर्णय का सिद्धान्त लागू होना चाहिए और उनके प्रजातन्त्रीकरण के लिए कदम उठाये जाने चाहिएँ। कौमियत की वुनियाद पर जो भेद-भाव है, सव मिट

जाने चाहिएँ। उपनिवेशो की जनता की लाशो पर हम शान्ति या सन्धि का समझौता नही होने दे सकते।

हम इन सुझावो को सौदे की भावना से पेश नही कर रहे है और न दूसरे की मुसीवत से फायदा उठाने की हमारी ज़रा भी मंशा है। उस मुसीवत पर हम तो अपनी हमदर्दी ज़ाहिर करते है। लेकिन उस मुसीवत के आगे हम अपनी मुसीवते और वेवसियाँ थोड़े ही भूल सकते है। अगर हम पोलैण्ड या चेको-स्लोवाकिया की आज़ादी चाहते है, तो उससे कही ज्यादा हम चीन की आज़ादी चाहते हैं। यह कोई संकीर्ण स्वार्थ नही है जो हमें हिन्दुस्तान की आज़ादी को पहला दर्जा देने के लिए मजवूर करता है। अगर हमारे पास खुद आज़ादी नही है, तो किसी आज़ादी का हमारे लिए कोई मतलव नही हो सकता और अगर हम दूर देश की आज़ादी के लिए तो शोर मचाया करें मगर खुद गुलाम वने रहे तो यह कोरा मज़ाक ही होगा। लेकिन लड़ाई के दृष्टिकोण से देखा जाये तो भी उस लडाई को लोकप्रिय वनाने की खातिर वह आज़ादी ज़रूरी है, क्योकि ऐसा होने से ही लोगों को एक ऐसे उद्देश्य के लिए हिम्मत और वलिदान करने की प्रेरणा मिलती है जिसे वे अपना समझते है। ज्यों-ज्यो यह लडाई महीने-पर-महीने और साल-पर-साल चलेगी और सव मुल्को के लोगों पर थकान चढेगी तो अपनी गाढी कमाई की आज़ादी को वचाने की यह प्रेरणा ही अखीर मे काम आयेगी। आर्थिक स्वार्थ-वाली किराये की फौजो से, चाहे वे कितनी ही कुशल क्यों न हों, लड़ाई मे जीत नही होगी।

हिन्दुस्तान के वारे मे व्रिटिश सरकार को जो पहला क़दम उठाना है वह यह है कि खुले आम यह ऐलान हो जाना चाहिए कि हिन्दुस्तान आज़ाद और खुदमुख्तार राष्ट्र है और उसको अपना विधान खुद वनाने

का अधिकार है। हमे मानना पडेगा कि इस ऐलान पर एकदम ही पूरी तरह से अमल नही किया जा सकता; लेकिन जैसा कि कार्य-समिति ने बताया है इतना तो जरूरी है ही कि जिस हद तक मुमकिन होसके उस हद तक फिलहाल उसे अमल मे लाया जाये, क्योकि यह अमल ही तो है जो लोगो के दिमागो और दिलो को छूता है और जिसका असर दुनिया पर पडता है। यही वह तोहफा है जिसके दिये जाने से लडाई की गतिविधि सचालित होने लगेगी और उसे वह ताकत मिलेगी जो वडे कामो मे जनता की इच्छा से है। हम कुछ भी करे, वह हमारी स्वतन्त्र इच्छा व पसन्द का होना चाहिए और सिर्फ तभी सम्मिलित प्रयत्न सचमुच सम्मिलित वन सकेगा, क्योकि वह एक कार्य में हाथ बँटानेवाले कइयो के स्वतत्र सहयोग पर निर्भर होगा।

बदकिस्मती तो यह है कि ब्रिटिश सरकार ने, जैसा कि उसका कायदा है, ऐसी कार्रवाई कर डाली है कि हमारा वाजिब तौर पर उधर वढना मुश्किल हो गया है। हालाँकि वह अच्छी तरह जानती थी कि हम गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट मे सशोधन करनेवाले बिल के बिलकुल खिलाफ थे—तो भी उसने उसे कामन सभा में सब वाचनो मे ठीक ११ मिनटों मे पास कर दिया। इधर हिन्दुस्तान मे उसी तरह कानून और आर्डिनेस झटपट बना डाले गये। भारत-मन्त्री की कचहरी और हिन्दुस्तान की सरकार अब भी गये-गुजरे जमाने में रहती है। न तो वह तरक्की करती है, न सीखती है, न याद रखती है, यहाँतक कि लडाई का धक्का लगने पर भी उनको दिमागी तरीके या उनके पुराने ढग पर कोई ज्यादा असर नही पडा है। वे हिन्दुस्तान को पक्का माने बैठे है—यह नही समझते कि इस कायापलट के जमाने मे कोई चीज पक्की नही मानी जा सकती, फिर हिन्दुस्तान की तो बात ही क्या जो कि ऊपर सतह

से चुपचाप दीखते हुए भी सब तरह की ताकतों और जोरदार जरूरतों से आन्दोलित हो गया है।

तो भी नजदीक आने की मुश्किल के होते हुए भी कार्य-समिति ने, सच्ची राजनीतिज्ञता के साथ अपना हाथ बढ़ाकर अंग्रेजों और उन तमाम लोगों को जो आज़ादी के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं, अपने सहयोग का वचन दिया—मगर हिन्दुस्तान मान और आजादी के साथ ही सहयोग कर सकता है वरना उसके सहयोग की कोई कीमत नहीं। दूसरा कोई रास्ता है तो जबर्दस्ती का है और उसे सहने की हमें आदत नहीं रही है।

मौजूदा बात हिन्दुस्तान की आजादी पर लागू करना कैसे और किस हद तक जरूरी है? यह साफ है कि जो कुछ हम करें हमारी स्वतन्त्र इच्छा से और अपने फैसले के मुताबिक करेंगे। लड़ाई से ताल्लुक रखने-वाले मामलों मे कार्रवाई करने की बराबरी होनी ही चाहिए, भले ही वह कानून की किताब में न लिखी जा सके। देखने में हिन्दुस्तान लड़ाई मे लगा हो, लेकिन इस देश में युद्ध की हालत है कहाँ? और इसकी बिलकुल कोई वजह नही है कि मामूली तौर पर चलनेवाले धारासभाओं और न्यायालयो के कामों के बदले गैरमामूली कार्रवाइयाँ की जायें। इन गैरमामूली कार्रवाइयों का जमाना गया। अब तो उनको गड़ा मुर्दा ही रहने देना चाहिए और प्रान्तीय धारासभाओं और प्रान्तीय सरकारों के ज़रिए तमाम जरूरी कदम उठाये जाने चाहिएँ। ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने संशोधन करनेवाला जो कानून पास किया है उसे भी गड़ा मुर्दा ही रहने देना चाहिए और जहाँ तक प्रांतीय सरकारों का ताल्लुक है उनके अधिकारो और उनकी प्रवृत्तियों पर किसी कदर रोक नहीं लगनी चाहिए। वे मर्यादाएँ और वे किलेबन्दियाँ जैसी कि विधान में हैं अमल मे नही आनी चाहिएँ। इस हद तक तो कोई दिक्कत नहीं है।

लेकिन यह जरूरी है कि इस बीच के अर्से में भी हिन्दुस्तान के नुमाइन्दो का बाहरी मामलो में हथियारबन्द फौजो और आर्थिक मामलो म केन्द्रीय नीति और हलचलों (प्रवृत्तियो) पर कब्जा होना चाहिए।

यही एक रास्ता है जिससे सर्वसम्मत नीति पर चला जा सकता है। इस काम के लिए कोई आर्जी तरीका सोच निकालना होगा। आजकल के कानून में सशोधन कर देने से यह काम नही हो सकता। जब हिन्दुस्तान का बनाया हुआ विधान बनेगा तो सारे-के-सारे एक्ट को ही रद्द करना होगा। यह हो सकता है कि इस बीच सब की राय से कोई कारगर आर्जी इन्तजाम कर दिये जायें।

यह साफ है कि अगर हिन्दुस्तान की युद्ध-नीति को जनता का समर्थन और मदद दिलाना है, तो जनता के चुने हुए ऐसे प्रतिनिधि ही उसे चलायें जिनमें लोगो को विश्वास हो। यह कोई आसान काम नही है कि पीढियो से जो विचार बने हुए आ रहे है उन्हे दबा दिया जाये और अपने देशवासियो को इसे अपना ही उद्योग समझने को मजबूर किया जाये।

यह तो सिर्फ तभी हो सकता है जबकि उन्हे अपनी नीति समझाकर और उन्हे यह भरोसा दिलाकर कि इससे उनका तो भला होगा ही, दुनिया का भी भला होगा—अपने विश्वास में लिया जाये। इसी तरीके पर जनतत्र काम करता है। हमें लड़ाई को चलानेवाली बडी-बड़ी नीतियो को भी जानना पड़ेगा, ताकि हम अपने लोगो और दुनिया के आगे उनका औचित्य सिद्ध कर सके।

एक राष्ट्र की युद्ध-नीति में पहले उस देश की रक्षा पर विचार किया जाना लाजमी है। हिन्दुस्तान को यह महसूस होना चाहिए कि वह अपनी ही रक्षा करने में और अपनी ही आजादी को बचाने और दूसरे देशो में

हो रही आजादी की जद्दोजहद मे मदद पहुँचाने को अपना हाथ बँटा रहा है।

फौज को भी एक राष्ट्रीय फौज समझना होगा, तनख्वाहदार फौज नही कि जो किसी और में अपनी भक्ति रखती हो। इसी राष्ट्रीयता के आधार पर भर्ती होनी चाहिए ताकि हमारे सिपाही निरे तोप के गोलो के शिकार न होकर अपने देश और अपनी आजादी के लिए लड़नेवाले हों। इसके अलावा यह भी जरूरी होगा कि मिलीशिया के आधार पर वडे पैमाने पर नागरिक रक्षा की व्यवस्था भी की जाये। यह सब काम सिर्फ जनता की चुनी हुई सरकार ही कर सकती है।

इससे भी कही महत्त्व की वात है युद्ध-सवधी और दूसरी आवश्यकताओ की पूर्ति करनेवाले उद्योगो की वढती करना। लड़ाई के जमाने मे हिन्दुस्तान मे उद्योगो की तरक्की बड़े पैमाने पर की जानी चाहिए। उन्हें भाग्य भरोसे ही नहीं छोडकर वढने देना चाहिए वल्कि उनकी योजना वननी चाहिए और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से उनपर कब्जा होना चाहिए और मजदूर-कारीगरों को उचित सरक्षण दिया जाना चाहिए। इस काम मे राष्ट्र-निर्माण-समिति वड़ी मदद कर सकती है।

ज्यो-ज्यो लडाई वढती और ज्यादा पर ज्यादा सामग्री समेटती जायेगी त्यो-त्यो आयोजना के साथ उत्पत्ति और वितरण की व्यवस्था दुनिया भर में होगी और धीरे-धीरे विश्वव्यापी अर्थनीति की योजना वनेगी। पूँजीवादी प्रणाली को कोई नही पूछेगा, और हो सकता है कि उद्योगों पर अन्तर्राष्ट्रीय आधिपत्य हो जाये। ऐसे आधिपत्य मे एक महत्त्वपूर्ण उत्पादक देश के नाते हिन्दुस्तान का हाथ होना चाहिए।

अन्त मे शांति-परिषद् में हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से वोलने देना चाहिए। हमने यह वतलाने की कोशिश की है

कि जो लोग जनतन्त्र की दुहाई दिया करते हे उनके युद्ध और शान्ति के उद्देश्य क्या होने चाहिएँ और खासकर उनको हिन्दुस्तान पर किस प्रकार लागू किया जाना चाहिए। यह सूची पूरी नही है, पर यह एक ठोस नीव है जिसपर निर्माण हो सकता है, और उस आवश्यक प्रयत्न के लिए प्रेरणा मिल सकती है। हमने यहाँ युद्ध के बाद नयी विश्वव्यवस्था की समस्या को नही छुआ है, हालाँकि हमारे खयाल से ऐसी पुनर्व्यवस्था वहुत जरूरी और अनिवार्य है।

क्या दुनिया के और खासकर लडाई मे लगे हुए देशो के राजनेता और निवासी इतनी समझ और दूरदृष्टि पैदा करेगे कि हमारे बताये रास्ते पर चल सके ? हम नही जानते। मगर यहाँ हिन्दुस्तान में हम अपने भेदभाव--वाम और दक्षिण पक्ष--को भूल जाये और इन महत्व-पूर्ण समस्याओ पर विचार करे जो हमारे सामने हे और अपना हल पाने का आग्रह कर रही हे। दुनिया के पेट मे कई सम्भावनाएँ हे। कभी उसे कमजोरो, वेकामो और विखरे हुओ पर रहम नही आता। आज जवकि राष्ट्र जीवित रहने के लिए जी-जान से लड-भिड रहे हे तव केवल वे ही लोग वनते हुए इतिहास मे हिस्सा वँटायेगे जो दूरदर्शी और अनुशासन में होगे।

२३ सितम्बर, १९३९

: १० :

अंग्रेज़ जनता के प्रति

['न्यूज़ क्रॉनिकल' (लन्दन) को भेजा गया एक सदेश]

यूरप मे आज हिंसा और अमानुषतापूर्ण युद्ध का तूफान फैला हुआ है और उससे दुनिया भर की सभ्यता का ताना-बाना बिखर जाने का खतरा है। हथियारो की टक्करे तो है ही, मगर उनके पीछे खयालात और उद्देश्यो की गहरी टक्करे भी हो रही है और दुनिया का भविष्य काँटे पर झूल रहा है। इतिहास न सिर्फ लड़ाई के मैदानो मे तैयार हो रहा है बल्कि आदमियो के दिमागो में भी बन रहा है और खास सवाल सामने यह है कि जो इतिहास बनने जा रहा है क्या वह गुज़रे हुए ज़माने की तवारीख से मुख्तलिफ होगा? और क्या इस भयकर लड़ाई का मानवीय स्वतन्त्रता पर भारी असर पड़ेगा और लडाई के और मानवीय अधोगति के मूल कारणो को ही मिटा देगा? हिन्दुस्तान को आज़ादी की चाह है और लड़ाई और हिंसा से वह डरता है। उसके लिए यह सवाल सबसे ज्यादा महत्त्व का है। उसने फासिज्म की फ़िलासफी और साधनो का, नात्सी हमलो का और हैवानियत का ज़ोरदार विरोध किया है और उनमें उन्ही सिद्धान्तों को नदारत पाया है जिनका वे दावा करते है। हिन्दुस्तान तो विश्वशान्ति का अर्थ करता है स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र हासिल होना और एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र पर हुकूमत का खात्मा होना। इसलिए हिन्दुस्तान ने मचूरिया, अबीसीनिया, चेको-स्लोवाकिया पर हुए हमलो की निन्दा की और स्पेन की घटनाओ और पोलैण्ड पर हुए नात्सियो के हैवानियत से भरे हमले से उसे गहरी चोट पहुँची।

इसलिए हिन्दुस्तान वडी खुशी के साथ ससार मे शान्ति और स्वतन्त्रता की नयी व्यवस्था स्थापित करने मे अपने तमाम साधन जुटायेगा।

अगर इस प्रकार की शान्ति कायम करना ही ध्येय है तो युद्ध और शान्ति के उद्देश्यो की व्याख्या साफ-साफ की जानी चाहिए और आज उन्हीके मुताविक काम होना चाहिए। वैसा न करना या हिचकिचाना इस वात को जाहिर करना है कि कोई साफ उद्देश्य नही है और जो कुछ अन्धाधुध कह दिया जाता है उसके मानी गम्भीरतापूर्वक नही लगाये जाते। इससे उन सव लोगो को अदेशा होना वाजिव है कि जिन्होने कडवे तजुर्वे करके यह जान लिया है कि युद्ध उन उद्देश्यो को दवा लेते है और इसका नतीजा यह होता है कि प्रभुत्व हासिल करने और अपने को सुरक्षित रखनेवाला साम्राज्यवाद आ जाता है। यदि यह युद्ध प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय के पक्ष मे और नात्सी हमलो के मुखालफत के लिए लड़ा जा रहा है तो वह प्रदेशो को कब्जे मे करने, क्षतिपूर्ति (हरजाना) देने या मूल-सशोधन करने, उपनिवेशो के आदमियो को गुलामी मे जकडे रखने और साम्राज्यवादी तन्त्र को वनाये रखने के लिए नही लडा जाना चाहिए।

इसी आवश्यक कारण को लेकर काग्रेस ने व्रिटिश सरकार से अपने युद्ध और शान्ति के उद्देश्यो को साफ-साफ शव्दों मे वताने और खासकर इसकी घोषणा करनें को कहा है कि वे उद्देश्य इस साम्राज्यवादी व्यवस्था पर और भारत पर किस प्रकार लागू होते है ? हिन्दुस्तान साम्राज्यवाद को वचाने के लिए कोई हिस्सा नही ले सकता—हाँ, स्वतन्त्रता के लिए कशमकश करने में जुट सकता है। हिन्दुस्तान से मदद पाने के साधन वहुत है, मगर इससे अधिक कीमती है एक समुचित उद्देश्य के प्रति उसका नैतिक समर्थन व उसकी सद्भावना। आज हिन्दुस्तान उसके और इग्लैंड

के सदियो के झगडे को मिटानें के लिए जो सुझाव रख रहा है वह कोई छोटी वात नहीं है,क्योकि वह ससार के इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना होगी जो उस नयी व्यवस्था का सच्चा सूत्रपात करेगा जिसके लिए हम लड़ रहे है इस काम में स्वतन्त्र और समकक्ष हिन्दुस्तान ही अपनी मर्जी से सहयोग कर सकता है। जबतक यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नही हो जाता, तवतक हममे से किसीकी भी ताकत नही है कि हिन्दुस्तान के लोगो को ऐसी लडाई के लिए उत्साहित कर सके कि जो उनकी नही है। जनता की मर्जी से लडी जानेवाली लडाई को जनता का समर्थन मिलना चाहिए और लोगो को यह मालूम होना चाहिए कि उनका उससे क्या नफा-नुकसान है? सिर पर थोपी जानेवाली लडाई का लाज़मी तौर पर विरोध किया जायेगा और जनता की भावना उसके खिलाफ भडकेगी ही।

हमारी आज़ादी के लिए चल रही पीढियों की लडाई और कशमकश की सारी-की-सारी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना चाहिए। हमारा मौजूदा शासन-विधान तक हमपर लादा गया है, जिससे विरोध जैसा-का-तैसा बना रहा है। यह विरोध ऐसे गोलमोल आश्वासनो और वेमन से किये जानेवाले उपायों से, जो अपने उद्देश्य तक नही पहुँच सकते, मिट नही सकता। अव इस ऐतिहासिक सुअवसर को हाथ से न जाने देकर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाना और उसे अधिकार मिलना चाहिए कि वह शासन-विधान और स्वतन्त्रता का हुक्मनामा खुद तैयार करले। इससे कुछ भी कम होने का मतलव यह होगा कि यह मौका हाथ से जाता रहेगा और हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड के विरोध और सघर्ष का अभी अन्त नही होगा। इसका एक मतलव यह होगा कि सिर्फ हम हिन्दुस्तानी ही नहीं, वल्कि दूसरे भी युद्ध और शान्ति के ध्येयो की

सचाई में सदेह करते ह और दूसरा यह कि जो कुछ कहा जाता है उसमे और जो कुछ किया जाता है उसमे फर्क है।

इसलिए सबसे पहला कदम यह होना चाहिए कि हिन्दुस्तान के पूर्ण स्वतन्त्र होने की घोषणा करदी जाये। और इसके बाद इसपर अमली कार्रवाई होनी चाहिए—यानी जहाँतक हो सके वहाँतक हिन्दु-स्तानियों को हिन्दुस्तान की हुकूमत करने और अपनी तरफ से युद्ध को चलाने के अधिकार मिल जाये। तभी यह मुमकिन है कि ऐसी मनो-वैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न हो जिससे जनता का समर्थन मिल सके। स्वेच्छाचारी और दमनकारी कानूनो की हुकूमत से तो जनता की सहा-नुभूति जाती रहेगी और टक्कर शुरू हो जायेगी। कठिनाइयाँ तो इस समय ही पैदा हो रही है—सार्वजनिक कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये है और हिन्दुस्तान के कई प्रान्तो मे जनता और मजदूरों की हलचलो पर कडी पाबन्दियाँ लगा दी गयी है। यह वही पुराना तरीका है जो पहले भी सफल नही हो सका और फिर भी नाकामयाब रहेगा।

हिन्दुस्तान पिछले जमाने के विरोध को भुलाकर अपना दोस्ताना हाथ आगे वढाना चाहता है। लेकिन वह सिर्फ समता के सिद्धान्तो पर स्वतन्त्र देश वनकर ही ऐसा कर सकता है। उसे यह विश्वास होना वाजिव है कि वह पुराना जमाना गुज़र गया है और हम सब यूरोप मे ही क्या, एशिया और तमाम दुनिया मे एक नयी व्यवस्था कायम करने जा रहे हैं। हिन्दुस्तान का यह न्यौता व्रिटिश सरकार को अकेले उसीकी तरफ से नही वल्कि शान्ति, स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र में विश्वास रखने-वाले दुनिया के सव लोगो की तरफ से है। अगर इस इशारे का गहरा अर्थ नही समझा गया और उसकी पूरी-पूरी सुनवाई न हुई—तो यह

हम सबके लिए दुखदायी घटना होगी। लेकिन अगर सुनवाई हुई तो तमाम दुनिया के लोगों को खुशी होगी और मैदाने जंग में जीते जाने से नात्सीवाद को जितनी चोट लगेगी, उससे कहीं ज्यादा चोट इससे पहुँचेगी।

५ अक्तूबर, १९३९

: ११ :

ब्रिटेन किसलिए लड़ रहा है ?

विजेताओ और सरकारो ने हमेशा से युद्ध के उद्देश्यों के बारे मे जो भिन्न-भिन्न वक्तव्य दिये है, उन्हे सग्रह करना और पढ़ना इतिहास के विद्यार्थी के लिए एक बडी दिलचस्प और शिक्षाप्रद बात होगी। हमेशा धार्मिक या सामाजिक दृष्टि से ऊँचे-से-ऊँचे नैतिक आधार पर इनका समर्थन किया हुआ मिलेगा। किसी ऊँचे सिद्धान्त की खातिर हरेक आक्रमण उचित और हरेक नृशसता क्षम्य कह दी जाती है। अक्सर उसे पता चलेगा कि अत मे शान्ति स्थापित करने की लगन विजेता और आक्रान्ता को आगे बढने की प्रेरणा देती है। क्या हेर हिटलर तक ने ऐसा ही नही कहा है? हाल ही मे युद्ध के घोषित उद्देश्यो का एक लुभावना सग्रह इग्लैण्ड मे प्रकाशित हुआ था। उसमे दो हज़ार वर्ष पीछे तक की बाते थी। पढकर अचरज होता था। वही भाषा, वही शान्ति के लिए जोशीला प्रेम सौ या हज़ार बरस पहले दिये गये उन लडाई आरम्भ करनेवाले बादशाहो और सम्राटो के वक्तव्यो में था कि जैसा आजकल हम पढते है। हर किसीको करीब-करीब ऐसा खयाल हो सकता था कि कुछ जबानी हेर-फेर के साथ मि० नेविल चेम्बरलेन ही बोल रहे है, कोई मध्यकालीन शासक नही।

इस सग्रह में पच्छिमी देशो के बारे मे बाते थी, लेकिन हमे सन्देह नही कि वैसा ही सग्रह पूर्वीय शासको के वक्तव्यों से भी तैयार किया जा सकता है। उम्दा शब्दो और पवित्र सिद्धान्तो की आड मे अपने असली ध्येयो को छिपाना इसान का दोष है, जो पूर्व और पश्चिम दोनो में

पाया जाता है। शायद ही ऐसे शासक हुए हों जिन्होने इस तरीके से अपने दुष्कर्मों को छिपाने की कोशिश न की हो। दो हज़ार वर्ष पहिले हिन्दुस्तान मे राजाओ में बेमिसाल एक राजा था अशोक महान्। जब वह खूब देश जीत रहा था तब उसने युद्ध की भयकरता अनुभव की और अपना हृदय खोलकर रख दिया था।

जब हम इन वक्तव्यो और औचित्यो का पिछला लेखा देखते है तो हममें थोड़ी-सी मायूसी भर आती है या हम चिडचिड़े हो उठते हैं। क्या मानवता हमेशा एक ही तरह की धोखेधड़ी से गुज़रने के लिए है और क्या मुँहबोले शब्दो और खोटे कामो के बीच हमेशा ही इतनी चौडी खाई बनी रहेगी ? फिर भी जब-जब ये बहादुराना वक्तव्य दिये जाते है, तब-तब हममे आशा भर आती है और अपने पुराने सभी अनुभवो के खिलाफ हम यह विश्वास करने की कोशिश करते है कि कम-से-कम इस बार तो शब्दो को अमल मे लाया जायेगा। १९१४ और उसके बाद यही हुआ। लाखो नें विश्वास किया—और फजूल किया—कि युद्ध युद्ध का अन्त करने के लिए है और वह हमारी इस अभागी धरती पर शान्ति और आज़ादी कायम करेगा। लड़ाई ने क्या विरासत छोडी यह हम जानते है। राजनीतिज्ञो का छल,कपट और विश्वासघात भी हम जानते है और यह भी हम अच्छी तरह से जानते है कि उसके बाद से कितना खतरा हमारे पीछे लगा है।

और अब २५ वर्ष बाद फिर वही शब्द दोहराये जा रहे है, उसी तरह के पवित्र वक्तव्य दिये जा रहे हैं और बहुत से मुल्कों के युवक जो पुरानी धोखे-धड़ियों को नही जानते या उन्हे भूले हुए है, पर जो श्रद्धालु और बड़े जोशीले है, मृत्यु के मुंह मे जा रहे हैं। लेकिन क्या हमको वही चक्कर फिर से काटना जरूरी है ? अब नही, हम सब कहते है, कभी

नहीं। शायद मानवता राजनीतिज्ञो और उन लोगो के ओछे छल-कपटो से जो ज़रूरत से ज्यादा वक्त से हमारे भाग्य-निर्णायक रहे है, ऊँची उठेगी। लेकिन इस बारे मे हमे बहुत अधिक भरोसा नही करना चाहिए, क्योकि इसान जो चाहते है उसपर भरोसा करने की उनमे बेहद शक्ति होती है और इसलिए वे धोखे मे आ जाते है।

जबसे यूरोप में मौजूदा लडाई छिडी, तबसे आम जनता मे लेकिन अस्पष्ट रूप से यह बात चल पडी थी कि लडाई के उद्देश्य क्या है? और अधिकारी व्यक्तियो ने स्पष्ट रूप से ही उसका जवाब भी दे दिया था। उसके बाद १४ सितम्बर की काग्रेस की कार्य-समिति का वक्तव्य आया और पहले-पहल एक ऐसे सगठन ने, जिसका दुनिया भर में नाम है, कोशिश की कि लड़ाई के उद्देश्यो की साफ-साफ परिभाषा बतायी जाये। वक्तव्य हिन्दुस्तान के बारे मे ज़रूर था, लेकिन उनमे दुनिया भर के सामने आये हुए खास मसले पर विचार किया गया था, जो कि हर जगह के चतुर और भावुक लोगों के दिमागो मे चक्कर लगा रहा था। यह एक ऐसा मार्गप्रदर्शन था जिसके लिए दुनिया इन्तज़ार करती मालूम होती थी और लाखो आदमियों पर इग्लैण्ड और अमरीका में भी उसकी प्रतिक्रिया हुई। हमें यह साफ मालूम होना चाहिए कि हम किसलिए लड रहे है और हमे अपने राजनीतिज्ञो और नेताओ को घेर लेना चाहिए कि वे मसलो को स्पष्ट करे। काग्रेस की कार्य-समिति ने स्पष्ट और निश्चित सवाल पूछे थे। उन्हे टालना मुमकिन नही था, क्योकि टालमटूल खुद जवाब के समान थी।

अब जितना हमने पहले महसूस किया था, उससे भी ज्यादा हम महसूस करते है कि कार्यसमिति ने हिन्दुस्तान और विश्व-शान्ति और स्वतन्त्रता के लिए कितने गजब का काम किया है! कारण कि उससे

महत्त्वपूर्ण मसले दुनिया की राजनीति में आगे आगये और ब्रिटिश सरकार के लिए अपने उद्देश्यो और ध्येयों को लड़ाई के कुहरे मे छिपाये रखना मुश्किल होगया। उन्हे स्पष्ट और निश्चित किया जाना लाजिमी होगया। जिस संकट मे उन्होने अपने को पाया, उसके लिए हम उनसे अपनी हमदर्दी जाहिर करते है।

और अब हमें ब्रिटिश सम्राट की सरकार के एक ऊँचे अधिकारी से अपने सवाल का जवाब मिल गया है। वाइसराय का लम्बा वक्तव्य हमने पढ लिया है और जितना उसे पढ़ते है उतना ही हमारा अचरज बढता जाता है। वाइसराय ने कहा है कि "विश्व-राजनीति और इस मुल्क की राजनीतिक सचाइयों को ध्यान मे रखकर परिस्थिति का सामना करना चाहिए।" वैसा करने की हमने कोशिश की है और हम सिर्फ इसी नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि वाइसराय और ब्रिटिश सरकार हमारी दुनिया से बिल्कुल दूसरी ही दुनिया में रहते हैं कि जिसकी राजनीति और जिसके ध्येय हमे कोरी दिमागी कल्पनाएं मालूम होती है, जिनका उस दुनिया की असलियतों से कोई मतलब नही है जिसमें हम रहते हैं। क्या हिन्दुस्तान और दुनिया मे पिछले २० बरसों मे कुछ भी नही हुआ है जो हमसे २० बरस पीछे देखने के लिए कहा गया है? इस प्रगतिशील और तेजी से दौड़ती हुई दुनिया मे रोज बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे है और गुजरा हुआ एक साल बहुत पुराना इतिहास दीखता है। फिर २० वर्ष की तो बात ही क्या?

वाइसराय जो कहते हैं वह काफी महत्त्वपूर्ण है; जो-कुछ वह नहीं कहते है वह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उनके तमाम वक्तव्य में कहीं भी आत्म-निर्णय का, जनतन्त्र का, स्वतन्त्रता का जिक्र नही है। फिर भी इन तमाम या कुछ शब्दो के साथ ब्रिटिश राजनीतिज्ञो ने खूब

खिलवाड किया है। अब हम जानते है कि ब्रिटिश सरकार क्या नापसन्द करती है ?

हमसे कहा गया है कि युद्ध की इस शुरू की हालत मे युद्ध के उद्देश्यो की घोषणा करना सम्भव नही है। यह कथन उस हालत मे एक पूरा स्पष्टीकरण होता जबकि युद्ध में लगा हुआ देश फतह करने पर कमर कसे हुए हो और उस समय तक न बता सकता हो कि वह कितना बढ़ेगा जबतक कि जीत के बारे मे उसे भरोसा न होजाये। लेकिन आत्म-रक्षा या आक्रमण से बचाव या कुछ ध्येयो को कायम करने के लिए किये जानेवाले युद्ध से इसका कोई वास्ता नही है। हिन्दुस्तान को एक आज़ाद मुल्क स्वीकार करने, या उपनिवेशों मे दूसरी तरह की नीति अमल मे लाने या साम्राज्यवादी ढाँचे को मिटा देने पर लड़ाई की प्रगति का असर ही किस कदर पड सकता है ?

वाइसराय ने ब्रिटिश प्रधान मन्त्री के शब्द लिये है और इनसे वह भेद प्रगट होता है। युद्ध से वह कोई भौतिक लाभ नही उठाना चाहते है कि एक बेहतरीन अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति अमल मे आये जो युद्ध को रोके और जो यूरोप मे शान्ति कायम करने का एक जरिया पैदा करे। उनके वक्तव्य का सार यही है। वह यूरोप तक ही महदूद है, दूसरे महाद्वीपो का उसमे नाम तक नही है। जनतन्त्र या वैसी ही खयाली बातो के बारे मे उसमे कोई चर्चा नही है। ब्रिटिश साम्राज्य अपना और विस्तार नही करना चाहता। उसके पास तो काबू रखने लायक से ज्यादा पहले से ही है। लेकिन जो कुछ वह कर सकता है, उसीपर डटा रहकर वह शान्ति स्थापित करना चाहता है ताकि उसके व्यापक साम्राज्य में कोई विघ्न-बाधा न पड़े। इस प्रकार युद्ध का उद्देश्य है ब्रिटिश साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखना, एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति का निर्माण करना

जो कि उसे सुरक्षित बनाये रख सके और हिन्दुस्तान को जबतक सम्भव हो तबतक चगुल मे बनाये रखना ।

हम फिर कहते हैं कि हिन्दुस्तानियों को संतुष्ट करने के लिए ऐसी बात कही जाना और उनसे उस साम्राज्यवादी प्रणाली को मजबूत करने के काम मे मदद देने के लिए कहा जाना कि जिसके वे इतने दिनो से शिकार रहे हैं, एक अचरज की बात है। सिर्फ वही आदमी ऐसी दलील दे सकता है जिसे न हिन्दुस्तान का कोई ज्ञान हो, न जो हिन्दुस्तानियो के स्वभाव के बारे में कुछ भी जानता हो।

दुनिया आगे बढ़ रही है और उसके साथ हिन्दुस्तान भी आगे बढ़ रहा है, और एक पीढी पहले के तौर-तरीके और भाषाएँ हर जगह पुरानी पड़ गयी है। हिन्दुस्तान में वे जितनी पुरानी पडी है, उतनी और कही भी नही। हमारे मुँह आगे की तरफ है, पीछे की तरफ नही और हम आगे ही बढ़ेंगे। न तो 'हिटलर की जय !' के नारे लगाने का हमारा इरादा है और न 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद ज़िन्दाबाद !' ही चिल्लाने का विचार है।

१८ अक्तूबर, १९३९

: १२ :

बीस बरस

महायुद्ध खत्म हुआ और विजेता राष्ट्रों के बड़े-बडे लोग वार्साई के शीश-महल मे दुनिया को फिर से गढने के लिए बैठे। उनमे से अटलांटिक-पार से आये हुए एक साहब ने प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय की और एक ऐसे राष्ट्र-सघ की बढ-बढकर बातें की कि जिससे शान्ति स्थापित होने का भरोसा हो सके। लेकिन दूसरे लोगो को, जो कि अब विजय पाने के कारण सुरक्षित होगये थे, आम लोगो से सम्बन्ध रखनेवाली इस आदर्शवादी बात में आगे कोई फायदा नही दीखता था। जनता में जोश पैदा करने का अपना काम वह कर चुकी थी और अब मज़बूत दिमाग़-वाले यथार्थवादी लोगो के योजना बनाने के काम में उसे दखल न देने देना चाहिए था। पाँचो बडे-बडे राष्ट्रो के प्रतिनिधि जमा हुए और फिर तीन बाद में शामिल हुए और उनकी मेहनतो से वार्साई की सधि निकल पडी। इस सन्धि से युद्ध की सारी उम्मीदे और आदर्शवाद उस ज़मीन में गहरे दफना दिये गये जिसमें न जाने कितने बहादुर जवान आदमियो के नश्वर अस्थिपञ्जर पडे होगे। इस सधि से उनके साथ दगाबाज़ी हुई।

वार्साई की सधि के इस युग में हम बीस बरस रह लिये है और हरेक नया साल दुनिया-भर के लोगो के लिए लडाई और क्रान्ति, आतक और मुसीबत लाया है; मगर फिर भी इन पुराने राजनीतिज्ञ पहरेदारो की, जिनकी वजह से लडाई हुई थी और जिन्होने यह सुलह की थी, हुकूमत जारी ही रही और वे निहायत इतमीनान से उन्ही

पुराने तरीकों से चिपटे रहे जिनकी वजह से बार-बार ऐसी बरबादियाँ हुई है। लेकिन सब जगह ऐसा नही था, क्योंकि एक लम्बा-चौड़ा भूखण्ड ऐसा भी था जहाँ एक नयी व्यवस्था आगयी थी और जो लगातार पुरानी को चुनौती दे रही थी।

इटली में मुसोलिनी उठा और दुनिया ने फासिज्म का नाम सुना। यूरप के बहुतेरे देशो मे तानाशाहियाँ कायम हुई। अभी तक कभी न देनेवाली महँगाई ने जर्मनी के मध्यम-वर्गो को कुचल डाला। इसी बीच जेनेवा में या किसी दूसरी जगह समझदार आदमी जमा हुए और निहायत फुरसत के साथ उन्होंने नि'शस्त्रीकरण के फायदो या मुआवजों के सवाल पर चर्चाएँ की।

अचानक एक भारी आर्थिक मदी ने दुनिया का गला दबा लिया। धनी और अभिमानी इंग्लैण्ड के कान खड़े होगये और वैभवशाली अमरीका हिल उठा। साल-पर-साल वह मन्दी फैलती ही गयी, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बिलकुल रुक गया और धधकते हुए अक्षरों में उसने लिखा कि पूँजीवादी ढाँचे का खात्मा होकर रहेगा।

हिटलर आया जो वार्साई का बच्चा था पर उससे बदला लेने को उतारू था। उसने हैवानियत और बेरहमी से भरे दमन का एक नया नमूना पेश किया। अपनी जनता की राय तक को ठुकरा इंग्लैण्ड ने उसकी पीठ ठोकी और आशा बाँधी कि वह सोवियट के बढ़नेवाले तूफान को रोकनेवाला सूरमा साबित होगा। घटना-चक्र और भी तेजी से घूमता गया। एक घटना दूसरी से आगे बढ़ने लगी और आक्रमण पर आक्रमण होने लगे। इंग्लैण्ड इन सबका विरोध करते हुए लेकिन फिर भी अपनी कार्रवाइयों से बढावा-सा देते हुए पास खड़ा रहा। यही मंचूरिया मे और बाद में अबीसीनिया मे हुआ। बहुत-कुछ ब्रिटिश सरकार के इशारे पर

ही आस्ट्रिया पर कब्जा कर लिया। उसके बाद सितम्बर १९३८ मे चेको-स्लोवाकिया की दुखद घटना घटी।

यह सब बीता हुआ इतिहास है। मगर हम उसकी ओर फिर ध्यान देते है, क्योकि उसे भूलने में खतरा है। वाइसराय ने हमें बीस बरस पीछे ले जाकर अच्छा ही किया हैं। कम से कम इसकी वजह से हम इतिहास के पन्नों में दबी पड़ी हुई घटनाओ से अपने दिमागो को ताजा करेगे और उनसे सबक सीख लेगे। हम चीन में अग्रेजों की नीति को याद करेगे जिसने हमले की तरफ से आँखें फेर ली थीं। साथ ही हम म्यूनिक की भी याद करेगे, जो दुनिया के इतिहास की धारा को पलटनेवाली घटना थी। और स्पेन को और उसके साथ किये गये विश्वासघात की बेहद डरावनी बातो को तो भूल ही कौन सकता है? हमें याद आयेगा कि म्यूनिकवाले आदमी ही अब भी इंग्लैण्ड के काम-काज के सर्वेसर्वा है और वही उसकी नीति को चला रहे हैं। इसमें ताज्जुब ही क्या है कि उन्होने हिन्दुस्तान में उसी ब्रिटिश नीति का नया वक्तव्य दिया, जोकि खुद ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बराबर बूढ़ी हो चुकी है। यह नीति तो तमाम नरम और आजादी को चाहनेवाले लोगो को कुचलने, यूरप व हिन्दुस्तान दोनो जगहो के प्रतिगामियों को खुश करने, अपने साम्राज्य को सुरक्षित करने और अपने आर्थिक व दूसरे स्थापित हितो की हिफाजत करने के ही लिए है।

क्या यह सच नहीं है कि जर्मनी के पोलैण्ड पर हमला कर देने के बाद भी मि० नेविल चेम्बरलेन जर्मनी को सन्तुष्ट करने और उसकी शक्ति और शस्त्र-बल को रूस की तरफ मोड़ने के सपने देख रहे थे? लड़ाई की घोषणा के पहले ब्रिटिश पार्लमेण्ट की जो निपटारा करनेवाली बैठक हुई, उसमें इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री अटक-अटक और सँभल-सँभलकर बोले

और अपने कजर्वेटिव (अनुदार) साथियों तक मे उन्होने ऐसा गुस्सा भडका दिया कि वे चिल्लाकर इस लेबर-नेता से कहने लगे कि वह राष्ट्र के पक्ष में बोले। मि० चेम्बरलेन ने जनमत की शक्ति को भाँप करके उसी रात जर्मनी को अपनी आखिरी चेतावनी भिजवा दी।

हमले के खिलाफ और जनतन्त्र के पक्ष में लडी जानेवाली इस लड़ाई के नेता ये है। म्यूनिक और स्पेन के भूत जैसे दुनिया के पीछे पडे है, वैसे ही उनके पीछे भी पडे हुए है और शान्ति और आजादी को ये नेता लोग नही ला सकते। क्या हिन्दुस्तान, जो कि नाराजी और ज़िद के साथ उनकी विदेशी नीति के खिलाफ रहा है, अब उन्हीके हाथ की कठपुतली बनने पर राजी हो सकता है? लेकिन इस सवाल का जवाब तो वाइसराय पहले ही दे चुके है।

बीस बरस बीत गये है और याददाश्त के बाहर जा चुके है। वाइस-राय का कोई वक्तव्य भी उन्हे वापस नही बुला सकता। हिन्दुस्तान ने उनसे बहुत-कुछ सीखा है, अपनी ताकत बढायी है और बहुत से भेद-विभेदों के होते हुए भी उसने ध्येय की एकता पैदा की है। वह पीछे नही हटेगा और वह कमजोर होगा, उसे रास्ता बतानेवाले खराब होंगे तो भी दुनिया उसे ऐसा नही करने देगी, क्योकि आज दुनिया में सबसे महत्त्व की बात है पुरानी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था का खात्मा होना और इन टूटे अण्डो को फिर से नही जोडा जा सकता। नष्ट होती हुई इस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करनेवाला ब्रिटिश साम्राज्य कूच करेगा और मौजूदा आर्थिक प्रणाली की जगह दूसरी आकर रहेगी।

हम पीछे नही हट सकते और न इस गतिशील दुनिया मे एक जगह खडे ही रह सकते है। और वे लोग जो इस बात को नही समझते या घटनाओ से कदम मिलाकर नहीं चल सकते, उनकी पहले से ही कोई

पूछ नही रह गयी है और वे उसी तरह से अलहदा हो जायेगे कि जैसे कूच करती हुई फौज मे से आवारागर्द आदमी हो जाते है।

कांग्रेस ने इंग्लैण्ड की सरकार और जनता के आगे दोस्ती और सहयोग का हाथ वढाया था और चाहा था कि हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड के वीच जो लम्वा झगडा है वह खत्म हो जाये। यह एक वहादुरी का प्रस्ताव था जो कि इन एकमात्र सम्भवनीय शर्तो पर किया गया था कि हिन्दुस्तान को आज़ादी दी जाये और वरावरी की भावना से किसी भी सम्मिलित कार्रवाई में एक दूसरे को सहयोग मिले। कांग्रेस ने कोई अधिकार या सत्ता अपने लिए नहीं माँगी थी। वह तो हिन्दुस्तानियो के लिए यह अधिकार चाहती थी कि वे अपनी राष्ट्रीय पचायत चुनकर उसके द्वारा अपना विधान वनाये और सत्ता प्राप्त करे। इस समस्या का यही एकमात्र जनतन्त्रात्मक हल था। यह सवके लिए भला था और मुमकिन था कि उसकी वजह से इग्लैण्ड से मित्रता का सम्वन्ध कायम हो जाता।

वह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया है। लेकिन समय-चक्र चलता जा रहा है और जल्दी ही ऐसा मौका आ सकता है कि उस प्रस्ताव को भी अमल में लाने का वक्त न रह जाये। हिन्दुस्तान के लाखो-करोड़ो आदमियो को अव पीछे रोककर नही रखा जा सकता और अगर उनके लिए एक दरवाजा रोक भी दिया गया है तो वे दूसरे दरवाजे खोल लेगें।

१९ अक्तूबर, १९३९

: १३ :

१९१९–३९

पिछले अध्याय में हमने बहुत थोडे में यूरप के पिछले बीस बरसों पर नज़र डाली है। हिन्दुस्तान की परिस्थिति को समझने की खातिर भी ऐसा करना ज़रूरी था, क्योकि यूरप दुनिया भर के तूफानो का केन्द्र रहा है और उसके भीतरी सघर्ष और विरोध के धक्के बहुत दूर-दूर पहुँचे हैं। हिन्दुस्तान ने इस चलते-फिरते और दुखभरे नाटक को बडी फिक्र और दिलचस्पी के साथ देखा है और उसके सम्बन्ध में अपनी राय जोरदार शब्दों में व साफ-साफ ज़ाहिर करदी है। चूँकि हिन्दुस्तान साम्राज्यवाद का विरोध करता आ रहा था, इसलिए लाजमी तौर पर उसकी सहानुभूति हमलों के शिकार होनेवाले मुल्को से रही और खुद अपने हित के लिए भी वह फासिज्म और नात्सीवाद की बढती हुई लहर का मुकाबला करने को प्रेरित हुआ। चीन, अबीसीनिया, आस्ट्रिया, फिलस्तीन, चेको-स्लोवाकिया और स्पेन की घटनाओ से हिन्दुस्तानियो को गहरा धक्का पहुँचा और इनके बारे मे इंग्लैण्ड की जो साम्राज्यवादी नीति है उसपर उन्होने नाराजगी और निन्दा ज़ाहिर की। हिन्दुस्तान को भविष्य का और उस लड़ाई का खयाल आने लगा जो आये बिना न रहनेवाली जान पड़ती थी और इस सम्बन्ध मे उसने अपनी नीति तय की। ज्यों-ज्यो जमाना बदलता गया हिन्दुस्तान के विचारो में विकास होता गया और उसने अपने आपको बदलती हुई परिस्थितियो में ढाल लिया।

१९१९ का साल हिन्दुस्तान के लिए दिशा-परिवर्तन का समय था।

मांटेग्यू आकर लौट गये थे और उनकी रिपोर्ट प्रकाशित होगयी थी। जैसी कि हमेशा हिन्दुस्तान मे अग्रेजो की नीति में रहा है, उसके लिए वक्त नही रह गया था। हिन्दुस्तानियो ने भारी बहुमत से उसको और उस कानून को जो इसके मातहत बनाया गया था, ठुकरा दिया। कुछ नामी हिन्दुस्तानी, जो कि अबतक कांग्रेस मे थ, दूसरी तरह सोचते थे, और उन्होने काग्रेस को छोडकर नरम दल बना लिया। लेकिन उनका अलग होना ही इस बात को, जाहिर कर रहा था कि राष्ट्र कहाँ है ? क्योकि मुट्ठीभर लोग ही उस भारी बहुमत के खिलाफ थे। १६१९ की प्रस्तावित सुधार-योजना को जो अग्रेज़ सरकार आज हमे दे रही है, हमने उसी साल बडी हिकारत के साथ ठुकरा दिया था। १९१९ में भी तो वह जैसी चाहिए वैसी न थी।

रौलट ऐक्ट आया और हिन्दुस्तान के राजनैतिक मच पर महात्मा गाधी के रूप में एक बडी ज़बर्दस्त तात्त्विक शक्ति प्रकट हुई जो हमारे राजनैतिक जीवन में एक क्रान्ति लायी। पजाब का मार्शल लॉ, जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड, खिलाफत-आन्दोलन और असहयोग—बस हिन्दुस्तान की जनता मे एक हलचल मच गयी, कि जैसी अबतक कभी नही देखी गयी थी। स्वराज हमारा ध्येय था और उसीके लिए हम लड़ रहे थे, इस प्रस्तावित विधान या उस वायदे के लिए नही जो कि ब्रिटिश मन्त्रीगण हमसे खुशी-खुशी करले।

इन हाल की घटनाओं पर नजर डालने की हमे ज़रूरत नही है, हालाँकि घटना-चक्र इतनी तेज़ी से घूमता रहा है कि ये हाल के वाकयात आज बहुत पुराने-से पड गये जान पड़ते है और आज की पीढी के बहुत-से लोगो को उनका पता तक नही है। उनकी याददाश्त कमज़ोर है। लेकिन इन बरसो मे हिन्दुस्तान का नक्शा बदल गया है और खेतो

के गरीब और नाचीज़ किसान तक की आज पहले से बहुत काफी कायापलट हो चुकी है।

बारह बरस पहले मद्रास में काग्रेस ने स्वतन्त्रता की बात कही थी और दो बरस बाद रावी-तट पर हमने उसकी प्रतिज्ञा ली और उसे पाने का पवित्र सकल्प किया। उसके बाद सविनय आज्ञा-भग आया और हिन्दुस्तान के नर-नारियो ने मिल-जुलकर तकलीफो और कुर्बानियो के बीच फिर से वह प्रतिज्ञा ली। एक साम्राज्य ने अपनी ताकत से उन्हे कुचल देने और उनमे फूट पैदा कर देनें की कोशिशे की और थोड़े दिनो के लिए उसे ऊपरी कामयाबी मिली भी, लेकिन आजादी की उस तेज ज्योति को जो हमारे दिलो में जोश भर रही थी और मन मे रोशनी कर रही थी—कौन कुचल सकता था, कौन बुझा सकता था ?

फिर गोलमेज परिषद् का सूना-सूना सिलसिला शुरू हुआ और अग्रेजो की कुटिल राजनीति ने हिन्दुस्तान के उन सब लोगो को, जो उसके आजाद होने की इच्छा के विरोधी और प्रतिगामी थे, इकट्ठा और सगठित करने की कोशिश शुरू की। उसके बाद आया १९३५ का ऐक्ट और हमने उसे नामजूर किया। तो भी लम्बे बहस-मुबाहिसे के बाद हमने मत्रि-मण्डल बनाने का फैसला किया। इसका निर्णय तो इतिहास ही करेगा कि तब हमने ठीक किया था या गलत; मगर हम उस ऐक्ट के खोखलेपन को और उससे हमारे चारो ओर जो खाइयाँ होगयी थीं उन्हें तो जान ही चुके है। पीढियो से साम्राज्यवादी और धौस जमानेवाली स्वेच्छाचारी हुकूमत के फलस्वरूप हम बडे-बडे मसलों में घिर गये। अपने-अपने इलाके में मनमानी करनेवाले देशी राजाओं की अग्रेज अधिकारियो ने हिमायत और मदद की। एक पुराने ज़माने की भूमि-पद्धति जनता पर भारी बोझ बन रही थी। हमारे शासकों की विदेशी हितों

और उद्योगो को सरक्षण देने और अपने सरक्षण और विशेषाधिकार की नीति के कारण न तो हमारा व्यापार ही तरक्की कर सकता था और न उद्योग-धन्धे ही। हमारी आर्थिक नीति ऐसी वनायी गयी थी कि वह लन्दन शहर का ही भला कर सके। व्रिटिश हितो की खातिर हमारी मालगुजारी को वडे पैमाने पर गिरवी रखकर नौकरियाँ सुरक्षित की गयी थी। यह था वह 'प्रान्तीय स्वराज' जो हमे मिला। इसमें हालाँकि जनता के चुने हुए मन्त्री लोग हुकूमत की कुर्सियो पर वैठाये गये थे, लेकिन शासन का साज-सामान तो वही पुराने ढग का, तानाशाही और नौकरशाही का था। उसे वे नयी-नयी वाते विल्कुल पसन्द न आती थी और वह उसमे रोडे अटकाने में अपनी तरफ से कोई कसर नही रखती थी। इससे भी वदतर वात जो थी वह यह थी कि देश मे विच्छेदकारी वृत्तियो और प्रतिगामी दलो को वढावा देने की उनकी कोशिश लगातार जारी थी ताकि उसी शासन की जड कमजोर पड जाये जिसमें सहयोग देने का वे दम भरते थे।

इतना होते हुए भी, प्रान्तीय सरकारो ने वहुत-कुछ अच्छे-अच्छे काम किये और जनता के वोझ को थोडा-वहुत हल्का किया। लेकिन तकलीफें उनकी हमेशा वढती ही रही और साफ नज़र आने लगा कि हिन्दुस्तान की समस्या तवतक सुलझ नही सकती, जवतक कि जनता के हाथ में सच्ची ताकत न आ जाये। स्वेच्छाचारी और गैरजिम्मेदार सरकार तो हथियारो के वल पर देश को कव्जे मे करके उसपर हुकूमत चला सकती थी, लेकिन जनता की चुनी हुई और जिम्मेदार सरकार ऐसा तभी करेगी जवकि उसके पास असली ताकत होगी और उसमे भी जनता की राय होगी। वीच की कोई भी स्थिति अस्थायी होती और ज्यादा अर्से तक नही चल सकती, क्योकि ताकत तो मिली

थी, पर उत्तरदायित्व नही दिया गया था।

तो, त्रिपुरी-कांग्रेस में इन पिछली घटनाओ के अनिवार्य और आवश्यक फलस्वरूप 'राष्ट्रीय माँग' पेश की गयी। 'प्रान्तीय स्वराज'—जैसा भी वह था—अपने आप खत्म हो चुका था और उसकी जगह हिन्दुस्तान का ही बनाया हुआ शासन-विधान—भारतीय स्वराज का हुक्मनामा—आना जरूरी था। यह माँग कोई नयी न थी, क्योकि कांग्रेस विधान-पचायत की माँग बरसो से करती आ रही थी। कांग्रेस ने १९३५ का शासन-विधान कभी मंजूर नही किया था। तमाम प्रान्तीय धारासभाओं का सबसे पहला प्रस्ताव इसी अस्वीकृति पर जोर डालने और विधान-पचायत की माँग करने के बारे मे था। तो यह माँग नयी नही थी। हाँ, उसमें अब लाजमीपन और जुड गया था। संघर्ष को छोड़कर अब दूसरा कोई रास्ता नही रहा था।

युद्ध बीच में आ पडा और सब कुछ अस्तव्यस्त हो गया और हम नये तौर-तरीको से सोचने के लिए मजबूर हुए। हिन्दुस्तान की उस वक्त की व्यवस्था निहायत गैरवाजिब और आगे न चल सकनेवाली हो गयी। हमारे सामने दो रास्ते थे और उनमें से किसी एक को हमें पसन्द करना था—या तो आगे बढकर स्वतन्त्रता को हासिल करे और राष्ट्र को आजाद बनायें या फिर प्रान्तीय स्वशासन के अँधेरे की छाया की तरफ लौट जाये, जहाँ हमपर प्रभुतावादी केन्द्रीय सरकार का कब्जा रहे। युद्ध से और दूसरे मसले भी उठ खडे हुए; मगर फिलहाल तो हम अपनी अन्दरूनी हालत को ही लें।

पीछे हटने की तो हिन्दुस्तान संभावना और कल्पना तक नही कर सकता था। मौजूदा परिस्थितियो में काम चलना मुश्किल हो गया था। इसलिए लाजमी तौर पर हिंदुस्तान ने अपनी पुरानी 'राष्ट्रीय-

माँग' दुहरायी और स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप मे अपना सहयोग देने का अभिवचन दिया। इस बात पर भी हिन्दुस्तान ने जोर नही दिया कि उसे बिना उसकी राय लिये और उसके अपनी घोषणा कर चुकने पर भी वह लडाई में शरीक देश मान लिया गया। कोई भी आत्म-सम्मान रखनेवाला देश उसकी जैसी स्थिति में इससे बढकर सुन्दर, स्पष्ट और उदारता का अभिवचन नही दे सकता था। इसमे सौदा पटाने की बाज़ारू भावना बिलकुल नही थी।

फिर भी इसको हिकारत के साथ ठुकरा दिया गया है और हमसे कहा गया है कि हम मुड़कर २० साल पहले उस चीज की तरफ देखे, जिसे हमने उसी वक्त यह कहकर अलग फेंक दिया था कि वह विचार करने लायक नही है। वे सोचते हैं कि हम हिन्दुस्तान की पिछली पीढी के इतिहास को भूल जाये, वर्तमान को न देखे, सारी दुनिया में जो कुछ हो रहा है उसपर ध्यान दे, अपनी गम्भीर प्रतिज्ञाओ को तोड़ दे और अपने साम्राज्यवादी शासको के इशारे पर उन सपनो और आदर्शो का गला घोट दे, जिनसे हमे ज़िन्दगी मिली है, ताकत हासिल हुई है।

वक्त गुज़रता जा रहा है दुनिया बदलती जारही है और कल की राष्ट्रीय माँग इतिहास की पुरानी घटना हो चुकी है। कल शायद वह भी नाकाफी हो जाये।

२० अक्तूबर, १९३९

: १४ :

आज़ादी ख़तरे में है !

लन्दन की अनगिनती दीवारो और घरों पर और इंग्लैण्ड-भर मे मोटे-मोटे अक्षरो में ये वाक्य लिखे हुए हैं—"**आजादी खतरे में है। अपनी पूरी 'ताकत' लगाकर उसे बचाओ**" यह ब्रिटिश सरकार की अपनी जनता से अपील है कि वे लड़ाई में शरीक हों और आजादी के लिए अपनी जाने कुर्बान कर दें। किसकी आज़ादी के लिए ? हिंदुस्तान की आजादी के लिए नही, यह हम जानते है; क्योकि ऐसा हमसे कहा गया है। ब्रिटिश और दूसरे साम्राज्यवादो के गुलाम देशों के लिए भी नही, क्योंकि हमारी माँग के बावजूद इग्लैण्ड के सम्राट् उस बारे मे समझदारी के साथ खामोश है। क्या इंग्लैण्ड यूरप की आज़ादी के लिए लड रहा है, जैसा कि मि० चेम्लरलेन ने कहा है ? यूरप के किस देश के लिए और कौनसी जनता के लिए ? हमें खयाल आता है एक छोटे से देश का कि जो किसी दिन था और जिसे चेको-स्लोवाकिया कहते थे। हालैण्ड के प्रधानमन्त्री ने साल भर पहले जिसके बारे में कहा था, "वह दूर-दराज का देश जिसके बारे मे हम कुछ नहीं जानते" और फिर उसीका खातमा करने चले थे। एक दिन स्पेन में भी एक बहादुर जनसत्तात्मक प्रजातन्त्र था, लेकिन उसको उन लोगो ने मटियामेट कर दिया जो कि उसके दोस्त बनने का ढोग रचते थे और जनतन्त्र की लल्लो-चप्पो करते थे।

एक दिन पोलैण्ड भी था। पर अब नही है ? क्या पुराना पोलैण्ड फिर उठेगा ? क्या मि० चेम्बरलेन यह मानते है या इसके लिए लड़ते है ? आधा पोलैण्ड आज उस आज़ादी से भी ज़्यादा पा गया है

जो उसे पहले भी मिली होगी और आज मास्को की पार्लमेण्ट मे उसके प्रतिनिधि उसकी तरफ से बोलते है। यह अजीब सी बात है कि जबकि हम हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय पचायतो और विधानो पर लगातार बात ही किये जाते है, तब युद्ध में पडा एक देश कुछ हफ्तो में ज्यादा आजादी-वाला विधान लेकर उठ खडा होता है।

इग्लैण्ड किसलिए लड रहा है ? मि० चेम्बरलेन किसकी आजादी के लिए इतने उतावले है ? अगर वह अग्रेजो की आजादी है तो उन्हे अपने आदमियो से अपील करने का पूरा हक है। लेकिन बर्नार्ड शॉ और दूसरे लोगों ने हमे बताया है कि किस तरह इग्लैण्ड के हरे-भरे और मनोरम प्रदेशों से आजादी युद्ध-कालीन कानूनों की वजह से तेजी के साथ हवा होती जा रही है। जर्मनी के जिस फासिज्म और प्रभुतावाद की अग्रेजो ने निन्दा की है, वे ही धीरे-धीरे इग्लैण्ड में घुसे आ रहे है और अग्रेजो की जनतत्रात्मक क्षमताओ को मार रहा है। इग्लैण्ड आज जनतत्रात्मक देश नही है और जिस साम्राज्यवाद का उसने बाहर लालन-पालन किया था, वही फासिज्म के बाने मे उसके पास वापस लौट रहा है।

जब हमारे पूछने पर भी अग्रेज हमें बताते नही, तो हमें कैसे मालूम हो कि इग्लैण्ड किसलिए लड़ रहा है ? लेकिन दिखावटी खेल जो हो रहा है, उससे हमें रोशनी मिल सकती है और हमारे सवालो का जवाब मिल जाता है। भले ही सरकारी अफसरों के ओठ सिले हुए हो, मगर उनके कामो से उनकी मशा साफ दिखाई दे जाती है। शाति के समय जैसा हमने साम्राज्यवाद का पूरा बोलबाला देखा, वैसा ही युद्ध के जमाने में भी हम देख रहे हैं। और ब्रिटेन का शासकवर्ग अपने साझे के हिस्से और स्थापित स्वार्थों से चिपका हुआ है। दूसरो की कीमत पर अपने हिस्सो को बढ़ाने की जो आजादी उसे इस समय मिली हुई है, उसे गँवा

देने का उसका इरादा नही है । यही आज़ादी है कि जिसके लिए ब्रिटेन के शासक लड रहे हैं । इसी आज़ादी की रक्षा के लिए वे अपने देश के पौरुष और यौवन का आवाहन कर रहे हैं और हमारे पौरुष को भी चुनौती देना चाहते हैं ।

लार्ड जेटलैण्ड हमसे कहते है—"**सम्राट की सरकार इस स्थिति को कबूल करने में असमर्थ है ।**" और वह 'स्थिति' यह है कि काग्रेस ने माँग की है कि हिन्दुस्तान को 'स्वतन्त्र देश' घोषित कर दिया जाये और उसे अधिकार हो कि बिना किसी बाहरी दखल के ऐसी राष्ट्रीय पचायत के जरिये वह अपना विधान बना ले कि जो व्यापक-से-व्यापक मताधिकार पर चुनी गयी हो । साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे मे वह समझौते से काम ले और समझौते से ही अल्पसख्यको के अधिकारो को सरक्षण दे । यह उससे हो नही सकता । इस प्रकार एक सीधा जवाब पाकर हमारा भी बोझ हल्का हो गया है ।

जेटलैण्ड साहब आगे कहते है—'**इतने दिनों से इंग्लैण्ड का हिन्दुस्तान के साथ जो संबंध रहा है, उससे सम्राट की सरकार की हिन्दुस्तान के प्रति कुछ जिम्मेदारियां हो जाती हैं । इसलिए हिन्दुस्तान के शासन के स्वरूप को तैयार करने में कोई भी दिलचस्पी न दिखाकर वह उसे यों ही छोड नहीं सकती ।**' हमने खुद स्पष्ट रूप से सोचा था कि सम्राट् की सरकार के आर्थिक या औद्योगिक या दूसरे हितो के प्रति जो जिम्मेदारियाँ है, उन्हे वह भूल या दरगुजर कर नही सकेगी और उनका आजादी से जो प्रेम है, वह जब इन जिम्मेदारियो के साथ टकरायेगा तो सरकार कड़ाई के साथ उसको दबायेगी । उन उदारमना मार्क्विस के इस बचाव और इस सफाई के लिए हम उनके मशकूर है । अब इसकी चर्चा न की जाये कि हिन्दुस्तान की आज़ादी की घोषणा के रास्ते मे साम्प्रदायिक

मामलो से रुकावट आती है। रुकावट डालनेवाला तो लदन का नगर है और है वे सब, जिनका कि वह प्रतिनिधित्व करता है। लार्ड और कॉमन-सभा वाले तो उसकी मर्जी पर चलनेवाले है।

लम्बे बहस-मुबाहसो और इनायतभरी सलाहों और मुलाकातो और साम्राज्यवाद के फौलादी पजो को ढकने और छिपाने के खिलवाड से हम कुछ उकता-से गये है। अब तो हम असलियत को देखना और उसका सामना करना ज्यादा पसन्द करते है। हिन्दुस्तान में स्वेच्छाचारी हुकूमत करते रहना और विधान को बिल्कुल रोक देना आजादी के साथ होनेवाले इस मजाक से कही अच्छा है। हमारे लिए भी दफ्तरो की कुर्सियो से बँधे रहने और हमारे ऊपर थोपे गये विधान के कैदी बने रहने से बेहतर यह है कि हम बयाबान मे बसें।

सम्राट् की सरकार हमारी स्थिति को कबूल करने मे असमर्थ है। हमारे लिए भी यह असभव है कि हम उनकी स्थिति को या स्वतत्र राष्ट्र को छोडकर और किसी भी स्थिति को कबूल करे। इस प्रकार दोनो आमने-सामने खड़े है और बीच में है एक चौड़ी खाई जिसे पाटा नही जा सकता। अब तो भविष्य—लडाई का और क्रातिकारी तब्दीलियो का भविष्य—ही हमारे बीच फैसला करेगा। हम भविष्य का महज इन्तजार ही नही करेगे, बल्कि उसे बनाने में मदद देंगे। इस वक्त तो हम दो खुली बेबसियो की टक्कर को मंजूर करे और भविष्य के बारे में सोचें और उसके लिए अपने को तैयार करे।

लेकिन तबतक हम कम-से-कम एक बार ब्रिटिश सरकार के आदेश को कबूल कर लें और अपनी जनता को याद दिला दें कि—

"आजादी खतरे में है ! अपनी पूरी ताकत लगाकर उसे बचाओ ! !"

८ नवम्बर, १९३९

: १५ :

रूस और फ़िनलैण्ड

रूस और फिनलैण्ड का झगड़ा युद्ध मे बदल गया है। किसी ऐसे छोटे देश के साथ हमारी सहानुभूति होना स्वाभाविक ही है जिसपर एक बडी ताकत ने हमला किया है। लाज़िमी है कि नात्सी हमलो की हाल की मिसालो के साथ हम रूस के अकारण किये गये आक्रमण की तुलना करे। क्या हम भूल सकते है कि बरसो से सोवियट रूस ने ऐसे सब आक्रमणो की निन्दा की है और ऊँची आवाज़ से हमलावर राष्ट्र के खिलाफ कार्रवाई करने की माँग की है ?

ये प्रतिक्रियाएँ अनिवार्य है। मगर फिर भी हम यह याद रखे कि हम युद्ध के दिनो मे रह रहे है और हमारे चारों तरफ एक-तर्फा खबर और प्रोपेगैण्डा का जाल फैला है। अगर हम इन खबरो और प्रोपेगैण्डा की कमजोर और फिसलानेवाली नीव पर अपनी आखिरी राय कायम कर लेगे, तो ऐसा करना न सिर्फ असुरक्षित ही होगा बल्कि हम उससे गलत रास्ते पर जा सकते है। हमारे लिए घटनाओं को सही दृष्टिकोण से देखना और पक्षपातपूर्ण प्रोपेगैण्डा से बहक न जाना उतना जरूरी पहले कभी न था, जितना कि आज है। फिनलैंण्ड के साथ हमारी सहानुभूति है, लेकिन उन सत्ताओं के साथ नही जो मतलब के लिए फिनलैंड से बुरा फायदा उठा रही है। फासिस्ट इटली तक पुकारकर कहता है—'हाय, बेचारा नन्हा-सा फिनलैण्ड !' और रूस द्वारा फिनलैण्ड पर किये गये आक्रमण पर बड़ी गभीरता के साथ भय प्रकट करता है।

हम ऐसे ज़माने मे रह रहे है कि जो बहुत ही हल्ले-गुल्ले और

आक्रमणमूलक सत्ता-राजनीति का जमाना है। आज मनुष्य के व्यवहारो और अन्तर्राष्ट्रीय कानून मे हिंसा और हिंसा की धमकी का बोलबाला है और जहाँतक सरकारो का सम्बन्ध है, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य रहे ही नही है। दुनिया मे 'मीन कैम्फ' का सिद्धान्त नात्सियो के बल या चालो के बनिस्बत कही अधिक प्रभावशाली रूप मे फैला हुआ है। यह सिद्धान्त कोई नया नही है, हालाँकि इतनी स्पष्टता और बेहयाई के साथ शायद ही कही बतलाया गया होगा जितना नात्सी दुनिया के इस धर्म-ग्रथ मे बताया गया है। पुराने साम्राज्यवादो ने तो ठिकाने लगकर इज्जत की बाहरी पोशाक पहन ली और मीठी और नरम भाषा मे बोलने लगे, लेकिन वह नीति जिसने गुजरे जमाने मे उनपर अधिकार रखा और इस जमाने में भी रखती है 'मीन कैम्फ' की नीति है, क्योकि वह साम्राज्यवाद का भी उसी तरह सार है, जिस तरह वह नात्सीवाद का सार है। दोनो मे फर्क यह है कि नात्सीवाद इस नीति को घर-बाहर दोनो जगह लागू करता है। साम्राज्यवाद उसे खासकर बाहर लागू करता है और घर पर जनतन्त्र का दिखावा करता है। लेकिन जब फासिज्म की प्रतिक्रिया और रीति-नीति पुराने साम्राज्यवादो के घरो मे घुस आती है तो वह फर्क कम हो जाता है। युद्धकालीन परिस्थितियो के बुर्के मे फ्रास आज सैनिक तानाशाही शासन मे रह रहा है, इग्लैण्ड ज्यादा-से-ज्यादा प्रतिगामी होता जा रहा है।

सोवियट रूस की इग्लैण्ड और फ्रास ने बरसो से अवहेलना और बेइज्जती की, तो वह भी उनपर चढ बैठा है और उसने उन्हें दिखा दिया कि वह भी सत्ता-राजनीति का खेल सफलतापूर्वक खेल सकता है। दुनिया भौंचक रह गयी और यूरोप मे सारा सतुलन ही एकाएक बदल गया। रूस एक ताकतवर राष्ट्र बन गया और उसकी इच्छा की भी वकत होने

लगी। लोग तेजी से क्रेमलिन के महल में कदमबोसी के लिए जाने लगे। रूस ने अवसरवादी का खेल खेला और पश्चिमी देशों की कूटनीति का जो नमूना था, उसीके मुताबिक आश्चर्यजनक होशियारी के साथ खेला। उसने कहा कि क्रियात्मक रूप से वह भी यथार्थवादी है। और यथार्थवाद के नाम पर जो कुछ उसने किया, उससे हमें बहुत दुख पहुँचा है और यूरोप और सुदूर पूर्व में हाल में उसकी जो नीति रही है, उसे समझना बहुत मुश्किल है।

हमारा विश्वास है कि वास्तविक राजनीति में सोवियट रूस ने जो ये दुस्साहसपूर्ण कार्य किये उनसे उसके उद्देश्य को नुकसान ही हुआ है, चाहे सत्ता-राजनीति की भाषा में उसकी ताक़त बढ़ गयी हो। कारण यह है कि रूस की शक्ति तो उन आदर्शवादों और सिद्धान्तों में थी जिनका कि वह समर्थन करता था। वे सिद्धान्त भले ही आज भी वहाँ हों—कौन जानता है?—लेकिन आदर्शवाद तो कमजोर पड़ता जा रहा है और दुनिया इस हानि से बहुत-कुछ खो बैठी है। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि लड़ाई के इन दिनों में भी निरे अवसरवाद से मिलनेवाली ऐसी कामयाबी से जिसमें कोई नैतिक सिद्धान्त नहीं है कोई भी देश बहुत दूर नहीं जा सकता।

लेकिन रूस के बारे में फैसला करते समय हमें याद रखना चाहिए कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने उसके साथ जो कुछ किया है, उसीका बदला वह उन्हें चुका रहा है। ये राष्ट्र आज अगर डरके मारे हाथ जोड़ रहे हैं, क्योंकि उनके साथ चालाकियाँ चली गयी हैं और उन्हें हराया गया है, तो इससे हमारे हृदय में उनसे सहानुभूति होना जरूरी नहीं है।

इंग्लैंड और कुछ दिन पहले फ्रांस की बुनियादी नीति सोवियट की नीति के खिलाफ रही है। उन्होंने इस आशा से नात्सी जर्मनी के आगे

समर्पण कर दिया कि हेर हिटलर पूर्व की ओर बढेगा और सोवियट को खतम कर देगा। उन्होने रूस के साथ ऐसे वक्त में भी, जबकि खतरा उनके सिर पर खडा था, सुलह करने से इनकार कर दिया। अपनी साजिशो मे ये नाकामयाब रहे। अब भी जबकि लड़ाई चल रही है हर वक्त अन्दर-ही-अन्दर यह कोशिश जारी है कि उसे सोवियट-विरोधी युद्ध बना दिया जाये। पिछले तीन महीनो मे जो कुछ हुआ है उसके बावजूद अब भी यह मुमकिन समझा जाता है कि घटना-चक्र एकदम पलटे और पश्चिमी राष्ट्र रूस के खिलाफ सयुक्त हमला करने के लिए जर्मनी और इटली के साथ मिल जाये। फ्रेंच सरकार आज जितनी सोवियट-विरोधी है, उतनी और कोई सरकार नही है। हाल ही मे रूस के पोलैण्ड पर हमला करने से भी पहले ब्रिटिश, अमरीकन और फ्रेच अखबारो मे रूस पर जोरो के हमले हुए हैं। खबर है कि इटली फिनलैण्ड को हथियार, हवाई जहाजो की मशीने और गोला-बारूद भेज रहा है। इटली के वालटियर भी वहाँ भेजे जायेगे, ऐसी सभावना है।

साफ है कि यह मामला रूस और फिनलैण्ड के बीच का ही नही है, बल्कि उससे बहुत-कुछ ज्यादा है। इस सबसे यही पता चलता है कि उस सोवियट-विरोधी मोर्चे ने जिससे रूस के राजनेता बरसो से डरते आरहे है, ऐसी अजीब शक्ल अखित्यार की है। इस बात से डरकर इस खतरे का मुकाबिला करने के लिए रूस ने अपने चारो तरफ किलेबन्दी करने की कोशिश की है और बाल्टिक राज्यो में उसकी जो नीति रही है, वह भी इसी बात को ज़ाहिर करती है। फिनलैण्ड का डर उसे नही है, बल्कि डर उसे यह है कि कही फिनलैण्ड के प्लेटफार्म पर कूद-फाँदकर दूसरे राज्य उसपर हमला न कर दे।

कुछ बरसों से यह बात सब जानते है कि नात्सियो ने कूटनीति से

फिनलैण्ड में होकर रूस पर हमला करने की योजनाएँ वनायी थी। नकशे पर निगाह डालने से पता चलेगा कि यह कितना व्यावहारिक है और किस प्रकार फिनलैण्ड की सरहद से लेनिनग्रेड के वडे नगर तक आसानी से फौज जा सकती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सोवियट सरकार की अपने इस महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध केन्द्र को वचाने की उत्सुकता समझ में आ सकती है।

जबसे इग्लैण्ड-फ्रास-जर्मनी की यह लडाई शुरू हुई है, तभी से सोवियट की नीति सभावित हमले से अपने को बचाने और अपनी स्थिति को मजबूत करने की रही है। यह नीति (सधि के वावजूद भी) नात्सियो और अग्रेजो के दावो के खिलाफ रही है। असल मे वह स्वार्थपूर्ण रूप से सोवियट-समर्थक रही है। हाल ही मे रूस नें जो-कुछ किया है, उससे हम सहमत नही है, लेकिन दुश्मनो के सभावित मेल के खिलाफ अपने बचाव की उसकी हार्दिक इच्छा को हम पूरी तरह से समझ सकते हैं। नतीजा यह हुआ है कि इस नीति से मित्र-राष्ट्र जितने कमजोर हुए है, उससे ज्यादा नात्सी जर्मनी कमजोर हुआ है। जर्मन सत्ता उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व मे शिकजे मे आ गयी है और अगर सोवियटो को नही हटाया जायेगा, तो उन दिशाओ में नात्सियो के वढने के तमाम सपने खत्म हो जायेगे।

हम फिर इस वात को याद रखे कि ब्रिटिश और फ्रेंच साम्राज्यवाद को जितनी घृणा नात्सीवाद से है, उससे कही ज्यादा सोवियट रूस से है। इस वात की सभावना है, और इसको हम दरगुजर नहीं कर सकते कि कुछ राष्ट्र आपस में मिल जाये और सोवियट के खिलाफ खडे होकर उसे नष्ट करने की धमकी दें। हम नही सोचते कि इतने पर भी उनकी जीत हो सकती है। लेकिन रूस का जो महान् प्रयोग चल रहा है, उसमें

कोई रुकावट आ गयी या वह खत्म हो गया, तो यह बडे दुःख की घटना होगी। यह जरूर है कि इस प्रयोग मे बहुत-सी अवाछनीय बाते भी हुई है, जिनपर हमने बहुत अफसोस किया है, लेकिन फिर भी लाखो-करोडो सर्व-साधारण लोग उसपर आशा बाँधे हुए है।

सोवियट रूस ही था जिसने खुशी के साथ फिनलैण्ड को आजादी दे दी और सिर्फ कुछ ही दिन गुजरे फिनलैण्ड के प्रधान मन्त्री ने खुद कहा था कि सोवियट की माँगो से फिनलैड की आजादी को कोई खतरा नही हुआ। लेकिन फिनलैण्ड के पीछे छिपकर तो दूसरी ताकते वार करने लगी और आज फिनलैण्ड में जो कशमकश चल रही है, वह इसी सघर्ष का फल है।

इसलिए हम होशियार रहे और एकतर्फा व पक्षपातपूर्ण खबरो पर समय से पहले निर्णय न करे। लेकिन जहाँतक हिन्दुस्तान के हम लोगो का सम्बन्ध है उनके लिए तो नसीहत स्पष्ट है। आज दुनिया के हरेक देश को अपने बचाव का उपाय करना होगा और हरेक आदमी को अपनी ही ताकत पर भरोसा करना होगा। हम भी अपनी शक्ति का अपने ही अहिंसात्मक लेकिन प्रभावशाली ढग से निर्माण करे, जिससे हम साम्राज्यवाद के हर तरह के हमलों का मुकाबला करके हिन्दुस्तान की आज़ादी हासिल कर सके।

३ दिसम्बर, १९३९

: १६ :

अब रूस का क्या होगा ?

पिछले कुछ महीनो में बहुत-से हेर-फेर हुए हैं, बहुतेरी मुसीबतें आयी है और दुनिया और भी गहरे दलदल में फँसती जा रही है। भविष्य अनिश्चित और अन्धकारपूर्ण है और वह ज्वलन्त आदर्शवाद जो कि तीस बरसों के संघर्षों और विश्वासघातों मे भी किसी तरह बच रहा था, आज गायब होता नजर आता है। दुनिया में लड़ाई और हिंसा, आक्रमण और कूटनीति और विशुद्ध अवसरवाद का बोलबाला है और आगे आनेवाली चीजों की शक्ल और भी अस्पष्ट और विरूप होती जाती है। राजनीतिज्ञो की लच्छेदार भाषा की कोई परवा नहीं करता, न उनपर कोई भरोसा करता है और न उनके वायदों पर ही किसीको यकीन आता है। नयी आनेवाली व्यवस्था और सच्चा होनेवाला सपना अब कहाँ चला गया ? किसके पेट से वह पैदा होगा ? क्या इस बढ़ती हुई बदअमनी के आकाश मे विश्वबन्धुता और स्वतंत्रता के उज्ज्वल भाग्य-नक्षत्र का उदय होगा ?

शायद हमारा निराश होना उचित नहीं है, और हम श्रद्धा और साहस खो बैठे है। भविष्य ऐसा अन्धकारपूर्ण नहीं है जैसा आज की दुनिया हमें सोचने को मजबूर कर रही है। मगर उस भविष्य की जड़ें वर्तमान ही में है और वह उसी जमीन पर पनपेगा भी, जिसपर आज हम खड़े हुए है। इसीसे आज हम हिम्मत छोड़े बैठे हैं। लड़ाई और उसके साथ आनेवाले आतंक से भी हम उतने निराश नहीं होते जितने उन आदर्शों की कमजोरी से कि जिन्होंने अबतक हमें ताकत दी है। वे

आदर्श मौजूद जरूर है, लेकिन अन्देशे पैदा हो गये है और वे मन को डगमगा रहे है। क्या मानव-जाति इन आदर्शो को प्रत्यक्ष करने के लिए तैयार है ? क्या वह निकट भविष्य में ही उन्हे पा सकती है ?

करीब-करीब सभी जगह (हालाँकि हिन्दुस्तान में उतनी नही) प्रगतिशील शक्तियो का कमजोर पड जाना आज सब बातों से अधिक महत्त्व या दुःख की बात है। धक्के-पर-धक्के लगने से वे चकनाचूर होकर गिर पडे है और उस अस्त-व्यस्त और मायूस फौज की तरह हो गये है जो नही जानती कि अब किधर मुडना है ? आशाओ और आकाक्षाओ का उनका प्रतीक सोवियट रूस उस ऊँचे सिहासन से उतर आया है, जहाँ उसके उत्कट बहादुरो ने उसे बिठा दिया था और दिखावटी राजनीतिक लाभ के लिए उसनें अपनी नैतिक प्रतिष्ठा और मित्रता को बेच डाला है।

रूस के बारे मे उदासीन रहना किसीके लिए कभी आसान नही रहा; या तो उसकी खूब तारीफ की गयी है और उसे बढावा दिया गया है या फिर उससे निहायत नफरत की गयी है। ये दोनो ही रवैये लाजमी तौर पर गलत थे, लेकिन फिर भी दोनों समझ मे आ सकते थे। जो लोग स्थापित स्वार्थो और पुराने विशेषाधिकारो को छाती से लगाये हुए थे और देखते थे कि रूस उन दोनो की जडे उखाड फेंकेगा, उनमे उसके लिए घृणा होना स्वाभाविक था और जो लोग पुरानी व्यवस्था मे होनेवाले सघर्षो और मुसीबतो से ऊब गये थे, उनके दिमाग मे एक अधिक उपयुक्त और अधिक वैज्ञानिक आर्थिक प्रणाली पर खडी हुई एक नयी व्यवस्था के लिए उत्साह भर आया था। इस बडे भारी कार्य से वे जोशीले लोग इतने खुश हो गये कि उसके साथ जो बहुत-सी बुराइयाँ आयी. उनको उन्होने दरगुज़र या माफ कर दिया वह ठीक ही था, सबसे ज्यादा वकत तो रूस मे हुए बुनियादी हेरफेर की थी, फिर

भी यह उसके साथ कोई उपकार नही था कि जो भी चीज़ उसकी तरफ से होती, उसे बिना सोचे-समझे मजूर कर लिया जाता। अगर कोई राष्ट्र या जनता आत्म-तुष्ट हो जाती है और तमाम आलोचनाओ को अनसुना कर देती है तो वह कभी खुशहाल नही हो सकती।

रूस ने जो योजनाएँ बनायी और कई दिशाओ में जो अद्भुत उन्नति की, उससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। तब आयी ढेर की ढेर आपत्तियाँ, जिन्होने उसकी आशाओ पर अँधेरा छा दिया। भले ही वे सब या अधिकाश आपत्तियाँ उचित भी ठहरती, लेकिन इतने बडे पैमाने पर ऐसे षड्यन्त्र और बिगाड ऐसे देश में होने ही क्यो चाहिएँ कि जो एक महान् क्राति में से निकल चुका हो? अन्दरूनी हालत अच्छी नही थी। हिंसा होने लगी और आलोचनाओ को दबाया जाने लगा। लेकिन चोटी पर होनेवाले सघर्षो का आम जनता के ऊपर कोई असर नही पडा और वह तरक्की करती रही। यह आर्थिक व्यवस्था अपने आपमे मुनासिब ही थी।

रूस की अन्दरूनी हालतो के बारे मे चाहे कुछ भी शकाएँ रही हों; लेकिन बाहरी नीति के बारे में किसीको कोई शक न था। हर साल वह नीति शान्ति पर, सामूहिक सुरक्षितता पर और आक्रमण का विरोध करनेवाले लोगो को सहायता और बढावा देने पर टिकी रही। उस समय जबकि नात्सी और फासिस्ट ताकते खुले आम लेकिन निर्लज्जतापूर्ण आक्रमण करती जा रही थी और इग्लैण्ड और फ्रास अपनी विदेशी नीति से उनकी मदद पहुँचा रहे थे, तब सोवियट रूस अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्पष्ट और सगठित नीति का प्रतीक बना हुआ था। चूँकि उसने पश्चिमी यूरोपियन ताकतो की धोखेभरी साजिशो मे उनका साथ नही दिया, इसलिए उसकी अवहेलना की गयी, उसका अपमान किया गया और उसे नीचा दिखाया गया।

एक बड़े राष्ट्र के लिए इस कड़वी गोली को निगल जाना मुश्किल था। उससे नाराजगी हुई और बदला लेने की इच्छा भी। गोली तो दूर फेंक दी गयी, लेकिन इस कार्रवाई में रूस बहुत ज्यादती कर गया, क्योंकि दुनिया की नजर में जिस उद्देश्य के लिए उसका अस्तित्व था, उसीको खोकर उसने अत्यन्त सस्ते अवसरवाद की नीति ग्रहण कर ली।

रूस-जर्मन संधि से एक भारी धक्का लगा और जिस तरीके से और जितने वक्त में वह हुई, उसमें इस अवसरवाद की खास तौर से गंध आती थी। लेकिन उसका कारण समझ में आ सकता था और थोड़ा-बहुत समझाया भी जा सकता था। बाद को बाल्टिक प्रदेशों में जो नीति चली, वह तो हमें एक कदम और आगे ले गयी। इसकी भी सफाई थी—कि सोवियट अपनी उत्तरी-पश्चिमी सरहद को हमले से बचाना चाहता था और हर कोई जानता था कि वह एक खतरेवाला इलाका था भी। फिर भी हमारे शक बढ़ते ही गये।

उसके बाद फिनलैण्ड पर हमला हुआ। फ़िनलैण्ड से जो माँगें की गयीं वे रूस की आइंदा की हिफाजत के ख़याल से कुछ-कुछ मुनासिब थीं। पर यह भी याद रखना चाहिए कि हरएक बड़ा राष्ट्र हिफ़ाजत का बहाना लेकर अपनी सरहद बढ़ाना चाहता है। लड़ाई के ज़माने में और ऐसे वक्त में जब कि यूरोप में झगड़े की सम्भावना होती जिससे रूस पर संयुक्त हमला किया जा सकता, तब तो सरहद और लेनिनग्रेड के बड़े और महत्त्वपूर्ण नगर को बचाने की इच्छा समझ में आ सकती थी। लेकिन फिनलैण्ड पर जो फौजी हमला हुआ वह तो इन सीमाओं को भी पार कर गया, और रूस हमलावर राष्ट्रों की कतार में आ खड़ा हुआ। इसमें उसने उन परम्पराओं को धोखा दिया जिनका उसने खुद इतने बरस पालन किया था। इस भारी गलती के लिए उसे बड़ी भारी कीमत ऐसे

सिक्के मे चुकानी पडी कि जिसका हिसाव नही लग सकता; क्योकि वह वना हुआ है असख्य मानव प्राणियो की इच्छा और आदर्शो से। कोई भी आदमी या राष्ट्र इस अमूल्य वस्तु के साथ खिलवाड़ करेगा, तो उसे भारी नुकसान हुए विना नही रह सकता। फिर उसका तो कहना ही क्या जिसे अपने वुनियादी सिद्धान्तों और आदर्शो पर गर्व रहा हो?

शायद यह सच है कि सोवियट रूस कभी इस वात की उम्मीद नही करता था कि फिनलैण्डवाले इतने जोर-शोर से उसका मुकाबला करेगे। उसको भरोसा था कि वे लडाई का खतरा उठाने की बनिस्बत अपने को उसके हवाले कर देगे, जैसा कि वाल्टिक राज्यो ने किया था। मुमकिन है कि सोवियट सरकार यह आशा करती हो कि फिनलैण्ड के कार्यकर्त्ता और किसान लाल सेना के हमले का स्वागत करेगे। इन दोनों खयालों मे वह गलती पर था। इस वात में कोई सदेह नही है कि फ़िनलैण्ड की मदद इटली, फ्रास और इग्लैण्ड कर रहे थे और अब भी कर रहे है और इस तरह वह सोवियट-विरोधी सगठन का केन्द्र बन गया था। यह भी सच है कि जो खवरे हमे मिलती है वे वहुत ही विगड़ी हुई और एकतरफा होती है। हम उनपर ज्यादा भरोसा नही कर सकते। लेकिन इसमे जरा भी सन्देह नही है कि फिनलैण्ड के लोग राष्ट्रीय दृष्टि से एक होकर इस हमले का मुकावला कर रहे है और वहाँ के ट्रेड-यूनियन और किसान लोग दोनो उनकी पीठ पर है। एक छोटा-सा जनतन्त्रीय राष्ट्र वहादुरी के साथ अपनी आजादी की खातिर हमले के मुकावले मे लड रहा है और यह लाजिमी है कि सबकी सहानुभूति उसकी ओर हो।

फिनलैंड में होनेवाली यह लडाई हर जगह की विरोधी शक्तियो के लिए विधाता का एक विशेष वरदान वनकर आयी है। इसकी आड

मे वे अपने आक्रमणो और विश्वासघातो को छुपाकर, जिन लोगों पर दमन किया जा रहा है उनके हिमायती बनकर, इस आक्रमण के विरुद्ध उठ खडे होने का दिखावा करने लगे है। समाजवाद और सोवियट रूस के साम्यवादी राष्ट्र के प्रति उनको जो घृणा थी उसे काम करने के अनुकूल वायुमण्डल अब मिल गया है। जो राष्ट्र-सघ आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर बलात्कार होने के वक्त मजे से चैन की नीद सोता रहा था, जिसने म्यूनिक के समझौते को बडा तत्त्वज्ञानी बनकर मंजूर कर लिया था, जिसने स्पेन के मामले मे दस्तन्दाजी न करने की बदनाम नीति की तरफ से आँखे मूँद ली थी और पोलैंड पर जो नात्सी हमला हुआ उसके बारे मे जिसने एक शब्द तक नही कहा था, वह अकस्मात् जाग पडा है और सोवियट रूस पर चोट करने का एक हथियार बन रहा है।

लेकिन हर जगह—यूरप, अमरीका और एशिया मे—प्रगतिशील विचारो पर जो इसका असर पडा है, दुख की बात दरअसल वही है। जिनके हाथ मे आज रूस की सरकार है जिन्होने अपने उद्देश्य पर इतनी गहरी चोट की है कि जितनी एक या बहुत से दुश्मन भी मिलकर नही कर सकते थे। सद्भावनाओ की जो बडी पूँजी उनके पास थी, उसे उन्होने खो दिया और उसके साथ हमले को जोडकर उन्होने समाजवाद तक के उद्देश्य को हानि पहुँचायी। इन दोनों मे कोई जरूरी वास्ता नही है और उन्हें दूर-दूर रखना ही अच्छा है। लेकिन सोवियट के आक्रमण की हिमायत और तरफदारी करना या चुपचाप रहकर उसे मजूर कर लेना समाजवाद के साथ बुरा करना है। कुछ ऐसे लोग भी है, जिन्होने सोवियट सरकार की हरेक प्रवृत्ति का समर्थन करना धर्म बना लिया है और जो कोई ऐसी प्रवृत्ति की आलोचना या निन्दा करता है, उसे वे विधर्मी और बागी करार देते है। यह अन्ध-विश्वास है, जिसका विवेक से कोई

सम्बन्ध नही है। क्या इसी बुनियाद पर हम यहाँपर या किसी और जगह आजादी की इमारत खड़ी कर सकेंगे ? दिमाग़ की सलामती और अपने मकसद की सचाई छोड़ देने से खुद हमें और हमारे उद्देश्य को भी खतरा ही हो सकता है। दूसरी किसी जगह हमारे लिए किये गये फैसलो से हम बँधे हुए नही हैं। हम अपने निर्णय आप करते है और अपनी नीति खुद बनाते है।

रूस के खिलाफ जो बिगडे और इकतरफा प्रचार की बाढ़ इधर आ रही है, उससे हमें होशियार होना चाहिए। विदेशो में या हिन्दुस्तान में रूस पर जो बेदर्दी के आक्रमण हो रहे है, उनसे हमे सतर्क रहना पडेगा। अगर हमें समाजवाद मे श्रद्धा है तो उसको कायम रखना होगा और भरोसा रखना होगा कि समाजवादी व्यवस्था ही दुनिया की बुराइयो को दूर कर सकती है। हमें यह याद रखना होगा कि बहुत-सी बुराइयो के होते हुए भी सोवियट रूस ने इस आर्थिक पद्धति को कायम करके बहुत बड़ा काम किया है और अगर इस योजना का, जो भविष्य के लिए बहुत आशाप्रद है, अन्त हो जाये, या वह कमजोर हो जाये, तो वह बड़े दुख की बात होगी। हम उसमें हिस्सेदार न बनेंगे।

लेकिन हमे यह भी समझ लेना चाहिए कि सोवियट सरकार ने बहुत से मामलो मे बहुत ज्यादा गलती की है और हिंसा का, अवसरवाद का और सत्तावाद का बहुत आसरा लिया है। अपने साधनो को उसने बुराइयों से बरी रखने की कोशिश नहीं की, और इसलिए इन साधनों के साथ मेल बैठाने के लिए उनके उद्देश्यो को इधर-से-उधर किया जा रहा है। साधन तो उद्देश्य नही हैं। हाँ, वे उनपर काबू रखते हैं। लेकिन साधनों का उद्देश्य के साथ मेल होना चाहिए, नही तो उद्देश्य का रूप बिगड़ जायेगा और उस ध्येय से बिल्कुल भिन्न हो जायेगा जो हमारे लक्ष में था।

सलिए हिन्दुस्तान की ओर से हम अपनी दोस्ताना हमदर्दी रूस के समाजवाद के प्रति दिखाते हैं। अगर उसे तोड़ने की किसी भी प्रकार की कोशिश की जायेगी तो उसको हम बहुत नापसन्द करेंगे। लेकिन रूस की सरकार की राजनीतिक चालो और आक्रमणो से हमारी सहानुभूति नहीं है। फिनलैण्ड के खिलाफ जो लड़ाई हो रही है, उसमें हमारी सहानुभूति फिनलैण्ड के लोगो के साथ है कि जिन्होने अपनी आजादी को कायम रखने के लिए इतनी बहादुरी से लड़ाई लडी है। अगर रूस इसमें हठ किये जाता है तो इसका परिणाम उसके और दुनिया के लिए घातक होगा।

और यह भी हमें याद रखना होगा कि संक्रमण और परिवर्तन के इस क्रांतिकारी युग में जब कि हमारे पुराने आदर्श गड़बड हो गये हैं, और हम नये मार्ग की खोज में हैं, तो हमें अपने मन को स्वस्थ और ध्येय को दृढ़ बनाये रखना चाहिए और उन साधनो और तरीको पर भी अटल रहना चाहिए कि जो उचित हो और हमारे आदर्शो और ध्येयो के अनुरूप हो। इन ध्येयों की प्राप्ति हिंसा या सत्तावाद या अवसरवाद से नही होगी। हमें अहिंसा का पालन करना होगा। उचित कर्तव्य में डटना होगा और इस प्रकार उस आजाद हिन्दुस्तान का निर्माण करना होगा कि जिसके लिए हम पसीना बहा रहे हैं।

१६ जनवरी, १९४०

: १७ :

लड़खड़ाती दुनिया

पिछले कुछ हफ्तो में हिन्दुस्तान को अचानक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और उसकी हिन्दुस्तान में होनेवाली प्रतिक्रिया के बारे मे गंभीर होकर सोचना पडा है। हममें से कुछ लोग कई बरसों से अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में टाँग अड़ाते रहे हैं और कभी-कभी देश के बहुतेरे लोगों में अबीसीनिया, फिलस्तीन, चेको-स्लोवाकिया, स्पेन और चीन के बारे में थोड़ी देर को दिलचस्पी पैदा होती रही है। मगर बुनियादी तौर पर तो हम एक राष्ट्र के नाते अपने ही राष्ट्रीय मसलों में बहुत ज्यादा मशगूल रहे। यूरोप में लड़ाई छिड़ जाने से लाजमी तौर पर विदेश की घटनाओं में और भी ज्यादा दिलचस्पी पैदा होनी चाहिए थी। पर यह सब होते भी आखिर वह लडाई तो दूरदराज की ही थी और हमारी उत्सुकता एक दर्शक की-सी थी। १० मई हिन्दुस्तान के इतिहास में मशहूर है। इस दिन पश्चिमी यूरोप के निचले देशों, हालैण्ड और बेलजियम, पर हमला हुआ। बाद में जो घटनाएँ एक के बाद एक तेजी से घटित हुई उन्होंने हमारे दिमागो मे थोड़ी देर की सरगर्मी पैदा करदी है और लड़ाई मे हो सकनेवाले नतीजो को हमारे पास ला दिया है। नयी समस्याएँ अचानक हमारे सामने आ गयी हैं, और हमें एक दम नयी परिस्थितियों का सामना करना है।

ऐसी विकट परिस्थितियों में कांग्रेस कार्य-समिति की पिछली दो बैठकें हुईं और समिति ने उनसे अपना मेल बैठाने की कोशिश की। जनता ने कार्य-समिति के प्रस्ताव देखे हैं और उनके बारे में दलीलें भी

हुई है। अगर हम उस अजीब और बदलनेवाली दुनिया को, जिसमे हम रहते है, समझना चाहते है तो यूरप मे जो-कुछ हुआ उसपर और आगे उसके क्या-क्या नतीजे निकलेगे इसपर निष्पक्ष होकर विचार कर लेना अच्छा होगा। किसी इच्छा के साथ सोचना-विचारना ही तो कभी काम का नही होता, लेकिन आज तो वह खतरनाक है। आज भले ही और सारी चीजे इतना बदल गयी हो कि पहचानी भी न जा सके, लेकिन हम सबो की पुरानी लीक पर चलते जाने की, पुराने नारे बुलन्द करते रहने की और पुरानी बातो को ही सोचते रहने की बहुत ज्यादा आदत पड गयी है। बुनियादी सिद्धान्तो और उद्देश्यो में एक खास स्थायित्व और सिलसिला होना चाहिए, लेकिन दूसरी तरफ असलियत चाहती है कि हम अपने आपको उनके साथ निभालें।

क्या-क्या हो चुका है ? यूरोप का नकशा बिलकुल पलट गया है और बहुत-से राष्ट्र अब नही रहे है। पोलैण्ड गया, डेनमार्क और नार्वे ने सर झुका दिया, हालैंड की हार हुई, बेलजियम ने घुटने टेक दिये और फ्रास का पतन हुआ—एक दम और पूरी तौर से। ये सब जर्मन-साम्राज्य के पेट मे समा गये। बाल्टिक देशो और बसरेबिया को करीब-करीब सोवियट रूस ने हडप लिया।

ये उलट-फेर बहुत बड़े-बडे है मगर फिर भी दिन-पर-दिन यह अधिक-से-अधिक दिखाई देता जारहा है कि यह तो जो-कुछ होनेवाला है, उसकी भूमिका भर है। हम महज एक बड़ी दूर-दूर फैली लडाई और उससे होनेवाली भयकर बरबादियो को ही नही देख रहे है, बल्कि आज हम एक बड़े महत्वपूर्ण क्रान्ति-युग मे रह रहे है—जो आज तक के इतिहास के प्रश्नो मे आये हुए युग से भी अधिक व्यापक और विस्तीर्ण है। इस युद्ध का परिणाम-कुछ भी हो, यह इन्किलाब तो

अपना काम पूरा करके ही रहेगा। जबतक यह होता रहेगा, तबतक हमारी इस धरती पर शांति और संतुलन कायम नहीं हो सकता।

हमें यह समझ ही लेना चाहिए कि पुरानी दुनिया बीत चुकी है—चाहे वह हमे पसन्द हो या नही। जो लोग उसके सबसे ज्यादा प्रतीक रहे है, उनका कोई अस्तित्व नही रहा। वे तो उस गये-गुज़रे कल के भूत मात्र बनकर रह गये है।

अगर अन्त मे नात्सी लोग जीते—जैसा कि अच्छी तरह मुमकिन है—तो वे यूरप और दुनिया की क्या हालत कर डालेंगे इसम कोई शक नही रह गया है। वे जर्मनी के नेतृत्व और कब्जे में एक नये ढंग का यूरोपीय सघ बना डालेंगे—यूरोप को एक नात्सी साम्राज्य बना डालगे। छोटे-छोटे राष्ट्र नही रहेगें और न रहेगा प्रजातन्त्र—जैसा कि हमने उसे समझा है—और न पूंजीवादी व्यवस्था रहेगी जैसी कि अबतक चली आरही है। एक प्रकार का राष्ट्रीय पूंजीवाद यूरप मे फूले-फलेगा और बडे-बड़े उद्योग जर्मनी के प्रदेश मे केन्द्रित हो जायेंगे और दूसरे बडे-बडे देश—जिनमें फ्रास भी शामिल होगा—करीब-करीब खेतिहर देश रह जायेगे। इस प्रकार की प्रणाली एक सामूहिक महा-राष्ट्रीय अर्थनीति पर खडी की जायेगी और उसपर सत्ताधारियों का कब्ज़ा होगा। नात्सी साम्राज्य के उपनिवेश, खासकर अफ्रीका में, हो जायेंगे, मगर वह दूसरे गैर-यूरोपियन देशों की अर्थनीति को भी कब्जे में करने और उनके निवासियो की श्रम-शक्ति का उपयोग करने की कोशिश मे रहेगा। इस तरह के शक्ति-शाली सत्ताधारी सघ का आर्थिक भार भयकर हो जायेगा और रही-सही दुनिया को अपने-आप उसके साथ निवाह् करना और चलना पड़ेगा।

तो ऐसी है नात्सियो की योजना। अगर यह पूरी हुई तो इंग्लैण्ड का

क्या होगा ? अगर जर्मनी की पूरी-पूरी विजय हुई तो इंग्लैण्ड में ऐसा कोई राष्ट्र नहीं रह जायेगा—जिसकी कोई पूछ हो। यूरप में उसका कोई असर बाकी नहीं रह जायेगा; साम्राज्य उसका छिन जायेगा। फिर चाहे वह जर्मनीकृत यूरोपीय सघ में शामिल हो चाहे न हो, इसका कोई मूल्य न होगा। अंग्रेजी राज्य का केन्द्र हटकर दूसरी जगह, बहुत मुमकिन है कनाडा में, चला जायेगा और वे लोग अमरीका के सयुक्त-राष्ट्र से निकट सम्पर्क स्थापित कर लेंगे या उसी-में मिल भी जायेंगे।

यह बहुत-कुछ सोवियट रूस पर निर्भर रहेगा। इसमे शक नहीं कि रूस को नात्सियो की ताक़त का इतनी तेजी से बढना कतई नापसद है, क्योंकि वह आगे जाकर उनके लिए खतरनाक हो सकता है। फिर भी चाहे जो हो वह इस परिवर्तन के मुआफिक हो जायेगा, बशर्ते कि लडाई बहुत अर्से तक न चलती रही और लड़नेवाले थक न गये।

जर्मनी की तेजी से जीत होती गयी तो इस तरह नात्सी साम्राज्य यूरप में कायम हो जायेगा, जिससे उसके कब्जे में बडे-बडे प्रदेश आ जायेंगे। पूरब में उसका सम्बन्ध जापान से हो सकता है। दो और सब कायम रहेंगे—सोवियट रूस और सयुक्तराज्य अमरीका—जो दोनो के दोनों खासकर जर्मनी के दुश्मन है। भले ही लडाई खत्म हो चुके मगर इन शक्तिशाली साम्राज्यो में भी भविष्य में होनेवाली लडाई के बीज बने रहेंगे।

और अगले ही कुछ महीनो में अगर नात्सियो की जीत न हुई तो क्या होगा ? शायद एक अर्से तक लड़ाई चलेगी, जिसमें दोनो पक्ष बुरी तरह थक जायेंगे और दोनों को भारी नुकसान बैठेगा। इग्लैण्ड और यूरप का आर्थिक ढांचा बिखर जायेगा और उसका एक ही मुमकिन नतीजा

यह होगा कि एक मुख्तलिफ आर्थिक प्रणाली की बुनियाद पर राष्ट्रो का सघ या विश्व-सघ कायम होगा—और उत्पत्ति, निर्यात और वितरण पर ससार का कड़ा नियन्त्रण रहेगा। आज की पूँजी-वादी प्रणाली मिट जायेगी। ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा हो जायेगा। छोटे-छोटे राष्ट्र स्वतन्त्र इकाई बनकर नही रह सकेगे। हो सकता है कि धन का अर्थ भी बदल जाये।

इसलिए हर हालत में इस युद्ध मे मूलभूत राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन होगा जो कि मौजूदा हालत के ज्यादा मुआफिक होगा, जिनमे राष्ट्रो के बीच निकटतर सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा और अन्तर्राष्ट्रीय रुकावटे मिट जायेगी। जर्मनी की ताकत आज उसकी अदम्य शक्ति और बडी फौजो मे नही है जितनी इस बात मे है कि शायद आप ही-आप वह ऐतिहासिक घटनाओ का निर्माता हो गया है। वह इतिहास को बुरी दिशा मे ले जाने की कोशिश में है, थोडी देर को वह उसमे सफल भी हो सकता है। फ्रास और इग्लैण्ड की कमजोरी का खास कारण यही हुआ कि वे ऐसी प्रणालियो और ढाँचो से चिपटे रहे, जो बर्बाद होनेवाले थे। उनके साम्राज्य मे या उनकी आर्थिक प्रणाली मे कोई चीज ऐसी थी जो नष्ट होनी थी। उनको पिछले बीस बरसो में बार-बार मौका मिला था कि वे अपने आपको इतिहास की परिस्थि-तियो के अनुकूल बना ले और सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता पर टिकी हुई एक वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था कायम करने मे नेतृत्व करें। वे पिछले जमाने मे मिले अपने लाभो को न छोड पाये और स्थापित स्वार्थो और साम्राज्य से चिपटे रहे और आज जब वे सबसे हाथ धो बैठे है, तो अब क्या हो सकता है ?

कुछ समय के लिए फ्रास तो मिट ही गया, लेकिन इग्लैण्ड ने अब

भी सवक नही लिया। वह अब भी साम्राज्य की बात कर रहा है और अपने खास हितों व स्वार्थो को बनाये रखना चाह रहा है। आज यह देखकर अफसोस है कि एक महान् जाति इतनी अन्धी हो गयी है कि उसे और कुछ नही सूझ रहा है। सूझता है तो सिर्फ यही कि एक वर्ग के सकुचित हित कायम रहे। वह सारा खतरा उठाने को तैयार है, लेकिन ऐसा कार्य करने को तैयार नही जिससे वह दुनिया के साथ हो जाये और बडे-बडे कदम से चलनेवाली महान् ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के अनुकूल बन सके।

१६ जुलाई, १९४०

: १८ :

हमारा क्या होगा ?

जर्मनी की हार होगी कि जीत ? इससे यूरोप और दुनिया के भविष्य में बेशक बडा फर्क पडेगा। फिर भी दोनो में से कोई एक बात होने से ही ऐसी खास तब्दीलियाँ होगी जिनका असर काफी गहरा होगा। छोटे-छोटे राष्ट्र मिट जायेगे और उनकी जगह या तो विश्व-सघ कायम हो जायेगा, या तीन या चार सघ-राज्य कायम हो जायेगे। अगर दूसरी बात हुई तो भीतरी और बाहरी दोनो तरह के लड़ाई-झगडे चलते रहेगे। अन्दरूनी झगडे इस कारण रहेंगे कि साम्राज्य में उन दूसरे राष्ट्र या देश-वासियों पर जबरन शासन होता ही है, जो अपने आपको आजाद करने की कोशिश करते है। बाहरी झगडे इस कारण रहेगे कि दूसरे सघ-राज्यो या साम्राज्यों से उनका मुकाबला रहेगा। हरेक शायद कोशिश करे कि उसके प्रदेशो में स्वावलम्बी अर्थनीति (autarchy) कायम हो, परन्तु इससे सन्तुलन या स्थायित्व पैदा नही हो सकता और शाति से या फिर लडाई से एक अकेला विश्व-सघ स्थापित होकर रहेगा। अनिवार्य रूप से ऐसा होकर रहेगा क्योकि इसको छोडकर दूसरा रास्ता तो आपस में बडी-बडी बरबादियाँ करते रहने और जगली हालत मे चले जाने का है। आजाद राष्ट्रो के सच्चे सगठन से ही ऐसा विश्व-सघ बन सकेगा। जबरन थोपी हुई व्यवस्था के मानी तो यह होंगे कि जिसे सघ कहा जाता है वह तो एक ऐसा सघ-राज्य होगा, जिसके अन्दर उसीकी बरबादी के बीज मौजूद होगे।

युद्ध का नतीजा कुछ भी हो, यह साफ दिखाई देता है कि अंग्रेजी

साम्राज्य का खात्मा हो जायेगा। इसके लिए काफी कारण है कि ऐसा क्यो होना चाहिए, मगर युद्ध-चक्र ने यह बात स्पष्ट करदी है। भले ही कई सघ-साम्राज्य बन जाये, लेकिन आज ब्रिटिश साम्राज्य की जैसी बनावट है, उस शक्ल मे तो वह नही रहेगा। हो सकता है कि इग्लैण्ड-अमरीका का सम्मिलित सघ बन जाये और दूसरे देश भी उसमें शरीक हो जाये या एक सघ-साम्राज्य कायम हो जाये। ऐसे सघ या साम्राज्य मे इग्लैण्ड का दर्जा निचला रहेगा। आज इग्लैण्ड के पास जो दूर-दूर फैला हुआ साम्राज्य है उस किस्म का साम्राज्य आइदा न रहेगा, भले ही सभाव्य विश्वव्यापी सघ-साम्राज्य में उसकी कोई जगह रहे तो रहे। ऐसी दूर-दूर बिखरी हुई सल्तनत के लिए यह भी लाजमी है कि समुद्रो और दुनिया के व्यापारिक रास्तो पर कब्जा हो; साथ ही हवाई ताकत भी काफी बढी-चढी हो। दुनिया भर पर हावी होसके ऐसी ताकत आज न कोई देश हासिल कर सकता है, न राज्यो का कोई गुट। अगर साम्राज्य कायम रहे, तो वे खास तौर पर सधिबद्ध साम्राज्य होगे और मुमकिन है उनके कुछ दूर बसे हुए उपनिवेश भी रहे जिनसे कोई खास फर्क न पडनेवाला हो।

लडाई शुरू होने के करीब एक बरस पहले कई राष्ट्रो का एक सघ स्थापित होने की सम्भावना पर बहस हुई थी। क्लेरेन्स स्ट्रेट के 'अब संघ' लेख ने बहुत ध्यान खीचा था। दूसरे कई प्रस्ताव भी थे। करीब-करीब सबमे एक खास बडी खामी यह थी कि वे दुनिया को ऐसी निगाह से देखते थे, मानो उसमे सिर्फ यूरप और अमरीका ही हो। चीन, हिन्दुस्तान और पूरब के दूसरे मुल्को की बिल्कुल उपेक्षा की गयी थी। इन प्रस्तावो पर हालांकि बहुत बहस हुई और उनका स्वागत भी हुआ, मगर लडाई के पहले की दुनिया में उनपर अमल न हो सका। उनकी मुखालफत

करने की किसी भी बडे देश की ज़रा भी मर्ज़ी न थी। तो जबकि इससे बडा भारी परिवर्तन हो सकता था, वह समय अब गुज़र गया। और आज कुछ देश और सरकारें इस खोये हुए मौके पर बुरी तरह पछता रहे हैं। जबकि फ्रास का प्रजातन्त्र तडफडा रहा था, इग्लैण्ड की सरकार ने तात्कालिक खतरे से मजबूर होकर फ्रास से मिलकर सघ बनाने का अजीब प्रस्ताव पेश किया। तब इसके लिए वक्त कहाँ रहा था? और इग्लैण्ड के मामले में भी वक्त नही रहा है। लेकिन इससे बिजली की तरह पता चल गया कि स्वतन्त्र राष्ट्रो के पुराने विचार और ब्रिटिश साम्राज्य के विचार भी अब काम के नही रहे।

और फिर भी कुछ लोग अब भी 'औपनिवेशिक स्वराज' की या उस-जैसी बात करते हैं। यह नहीं समझते कि यह खयाल अब मुर्दा हो गया है, उसे फिर जिन्दगी नही दी जा सकती। और कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान का बँटवारा कर दो और उनकी बुनियाद बडी अजीब और बेहूदी है। वे भूल जाते हैं कि दुनिया के अब और ज्यादा टुकडे करने की जरूरत नही। ज़रूरत है एकीकरण की, राष्ट्रों का सघ बनाने की। दुनिया अब छोटे-छोटे राज्यो को ज्यादा बर्दाश्त नही कर सकती।

तब, हमारी आज़ादी का क्या होगा? क्या उससे आज के राष्ट्रो का सगठन नष्ट न होगा? और विश्व-संघ मे उसका कैसे निबाह होगा? यह तो बिल्कुल सही है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा इस कारण चाहते है कि साम्राज्यवाद से किसी सच्चे सघ की पैदायश होना नामुमकिन है। और किसी भी हालत मे हिन्दुस्तान इस साम्राज्य मे रहनेवाला नही है। लेकिन जिस आजादी को हम हासिल करना चाहते हैं, वह दूसरे राष्ट्रो के झुण्ड से अलग या उसके अलावा एक राष्ट्र के रूप मे नही समझी जा रही है। हमने तो हमेशा

यही समझा है और उसीको पाना हमारा मकसद है कि दुनिया का घनिष्ठ सगठन बन जाये और सघ या सम्मेलन के जरिये काम चले और उसमे मिलकर हमें खुशी होगी। लेकिन हमसे यह कहा जाना कि हम औपनिवेशिक दर्जा मजूर कर लें और हमारी मर्जी के खिलाफ किसी खास तरह का सघ हमपर लादना तो आज की दुविधा के हालत में बडी बेहूदा बात है और किसी भी हालत में हम उसे बर्दाश्त करनेवाले नही है—चाहे उसका नतीजा कुछ भी क्यो न हो ?

लडाई का तीसरा लाजिमी नतीजा यह भी हो सकता है कि मौजूदा पूँजीवाद खत्म हो जाये और विश्वव्यापी आर्थिक प्रणाली में सुन्दर व्यवस्था और नियन्त्रण लाया जाये। इसके साथ-ही-साथ पूँजीवादी प्रजातन्त्र भी बदल जायेगा, क्योंकि यह सम्पन्न और समृद्ध राष्ट्रों की शान-शौकत की प्रणाली है। आइन्दा आनेवाले बुरे दिनों में वह नही चल सकती। इस तरह का प्रजातन्त्र तो अभी से ही लडाई के वजन से चूर-चूर हो गया है।

यह बडे दुर्भाग्य की बात होगी कि प्रजातन्त्र खुद ही मिट जाये और डिक्टेटरशाही कोई शक्ल उसकी जगह आ जाये। यह खतरा है और हमें इससे अपनी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन आज पश्चिम में जिस किस्म का प्रजातन्त्र नष्ट होते हुए हमने देखा है उससे कहीं अधिक योग्य और कुछ अशों में भिन्न प्रकार का प्रजातन्त्र ही आज जीवित रह सकता है।

आज जो घटनाचक्र घूम रहा है उसमें हम कहाँ है, हिन्दुस्तान कहाँ है ? यह काफी स्पष्ट हो चुका है। हम नात्सीवाद के बिल्कुल खिलाफ है और हमारे खयाल से सारी दुनिया पर नात्सी जर्मनी का हावी हो जाना एक दुखदायी घटना होगी। लेकिन हम तो इस बात से उकता गये और घबडा गये है कि हमपर ब्रिटिश साम्राज्यवाद थोपा जाये, भले ही वह

: १९ :

एशियाई संघ

जो कोई व्यक्ति घटनाओ के क्रम को देखता रहा है और भविष्य के परदे के भीतर झाँक सकता है, वह इस नतीजे पर पहुँचेगा कि हम एक युग के सिरे पर आचुके है। वह युग जिससे हमारी अवतक जान-पहचान थी, मर चुका है या हमारे सामने मरने के लिए तडप रहा है। लेकिन वास्तव में इसके मानी यह नही है कि दुनिया अव न रहेगी। इसका यह भी मतलव नही है कि सभ्यता वरवाद हो जायेगी। लेकिन इसका इतना मतलव ज़रूर है कि उन वहुतेरी चीजो की—जिन्हे हम जानते है—जैसे राजनैतिक स्वरूपो, आर्थिक ढाँचो, सामाजिक सम्वन्धो और इनसे सम्वन्धित हमारी तमाम वातो मे एक वडी भारी कायापलट होनेवाली है। अगर कोई सोचता हो कि दुनिया इसी रूप में चलती रहेगी, जिसमे कि हम उसे देखते आ रहे है, तो उसका ऐसा सोचना फजूल है।

यह मानी हुई वात है कि छोटे-छोटे देशों के दिन लद गये। यह भी पक्की वात है कि अपने-आप अकेले खडे रहनेवाले वडे देशो तक का ज़माना भी गुज़र गया। सोवियट-सघ (रूस) या सयुक्तराष्ट्र अमरीका जैसे वडे-वडे देश भले ही अकेले रह सके, मगर सम्भव है उन्हे भी दूसरे देशो के समूहो के साथ शामिल होना पड जाये।

इसका एक ही वुद्धिसम्मत हल है और वह है स्वतन्त्र देशो का एक विश्व-सगठन। शायद हममें इतनी समझ नही है कि उस हल को ढूंढ निकाले या इतनी ताकत नही कि उसे प्रत्यक्ष कर सके।

अगर निकट भविष्य में कोई विश्व-सघ न वननेवाला हो और अगर

एकान्त राष्ट्रो का जमाना न रहा हो, तो ऐसी हालत में क्या होने की सम्भावना है ? हो सकता है कि राष्ट्रो के समूह या बड़े सघ बन जायें। इसमें बडा भारी खतरा है, क्योकि इससे एक-दूसरे के विरोधी जमाव होने की और इसलिए बडे पैमाने पर लडाइयाँ चलते रहने की सम्भावना है।

यह भी मुमकिन है कि इन समूहों के बनने से एक बडे विश्वव्यापी राष्ट्र-समूह की नीव तैयार हो।

यूरप में लोग यूरपीय सघ या सगठन की बात करते है, कभी-कभी वे उसमे सयुक्तराष्ट्र अमरीका और ब्रिटिश उपनिवेशों को भी मिला-लेते है। पर वे हमेशा चीन और भारत को छोड देते है। वे समझते है कि इन दोनो महादेशो की अवहेलना की जा सकती है। हिन्दुस्तान या चीन की अवहेलना के आधार पर कोई विश्वव्यापी व्यवस्था नही हो सकती और न हम यूरपीय और अमरीकन शक्तियो का एशिया और अफ्रीका का यह शोषण ही कभी बर्दाश्त कर सकते है।

अगर फेडरेशन बनने को हो तो हिन्दुस्तान का निबाह किसी यूरपीय सघ से नही हो सकता, क्योकि वहाँ वह अर्ध-औपनिवेशिक दर्जे के भरोसे पड़ा रहेगा। इसलिए यह साफ है कि इन परिस्थितियो मे एक पूर्वीय (एशियाई) सघ होना चाहिए जो पश्चिम का विरोधी न हो, बल्कि इतना होते हुए भी अपने ही पैरों पर खडा हो, आत्मनिर्भर हो और उन सबसे सबन्धित हो जो विश्वशान्ति और विश्वसघ के लिए प्रयत्न-शील हो।

ऐसे एशियाई सघ में अनिवार्यत चीन और भारत, बर्मा और लका होगे और नैपाल और अफगानिस्तान को उसमें मिलाना चाहिए। इसी प्रकार मलाया को भी। और कोई वजह नही कि श्याम और ईरान भी क्यो न शामिल हो और कुछ दूसरे राष्ट्र भी। वह स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक ऐसा

शक्तिशाली समूह होगा जिससे न केवल उनका अपना ही बल्कि ससार भर का हित होगा। केवल भौतिक शक्ति ही शक्ति नही होगी बल्कि कुछ और भी होगी जिसके कि वे इतने युगो से प्रतीक रहे है इसलिए यह मौका है कि हम एशियाई सघ की बात सोचे और इसके लिए जान-बूझ-कर प्रयत्न करे।

इस एशियाई सघ का औरो से भी बढकर दो राष्ट्रो से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होगा। वे राष्ट्र होगे सोवियट रूस और अमरीका।

पश्चिमी सभ्यता के पतन की बहुत चर्चा है। जहाँतक पश्चिम के आर्थिक साम्राज्यवाद और पूंजीवादी व्यवस्था का प्रश्न है, यह शायद ठीक भी है। लेकिन अन्त मे जाकर यूरोपीय सभ्यता मे जो कुछ सबसे अच्छा है उसे तो रहना ही चाहिए। यह सब होते हुए भी मेरे खयाल से यह सच है कि आज की सभ्यता खत्म हो रही है और उसकी राख में से एक नयी सभ्यता का निर्माण होगा। मुझे आशा है कि पूर्व और पश्चिम की अच्छी से अच्छी बातें नहीं मिटेगी। पश्चिम ने जिस विज्ञान का नेतृत्व किया है उसके बिना किसी राष्ट्र का काम नहीं चल सकता। वह विज्ञान, और वह वैज्ञानिक स्पिरिट और तौर-तरीके आज जीवन के आधार बन गये है। विज्ञान मे जहाँ एक ओर सत्य की खोज है, वहाँ दूसरी ओर मानव जाति की उन्नति की चाह है। लेकिन उस विज्ञान का उपयोग जिस बुरे उद्देश्य के लिए किया गया है उसने पश्चिम को बरबादी मे डाला है। यही भारत और चीन अपने नियत्रणकारी प्रभाव और सस्कृति और सयम के लम्बे इतिहास लेकर सामने आते है।

इसलिए हम भविष्य की ओर देखें और पूर्वीय (एशियाई) सघ के लिए प्रयत्न करे और यह न भूले कि विराट् विश्वसघ की दिशा मे यही एक कदम है।

: २० :

चीन और भारत

भारत और चीन युग-युगान्तर से दो पृथक् और पुरातन सभ्यताओ और सस्कृतियो के प्रतीक रहे है। वे दोनो एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हुए भी अनेक बातो मे समान है। सब पुराने देशो की तरह, उन्होने अपने चारो ओर अपनी पुरानी रूढियों और परम्पराओ के रूप मे तरह-तरह के खण्डहर जमा कर रखे है। इनसे उनकी प्रगति में अड-चन पडती है लेकिन इस बेकार मलबे के ढेर के नीचे खरा सोना भी दबा पडा है जो उन्हें इन सब युगो में नष्ट होने से बचाता रहा है। भारत और चीन दोनो को जिस अवनति और दुर्भाग्य ने आ घेरा है, उनसे भी भीतर का वह सोना पिघल नही पाया है—जिससे कि वे भूतकाल मे महान् बने थे और जिससे आज भी उनकी एक विशेष स्थिति है। कवि इकबाल के शब्दो में भारत की भाँति चीन के विषय मे भी यह कहा जा सकता है :

> यूनानो मिस्रो रोमाँ सब मिट गये जहाँ से
> अबतक मगर है बाकी नामोनिशाँ हमारा;
> कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
> सदियो रहा है दुश्मन दौरे ज़माँ हमारा।

बरसो से और विशेषकर पिछले तीन या कुछ ज्यादा बरस से चीन अग्नि-परीक्षा में से निकल रहा है। चीन की जनता के उस बेहिसाब सकट का अन्दाजा हम कैसे लगायें, जिनपर एक साम्राज्यवादी राष्ट्र ने चढाई और हमला किया है, जिनपर अपने नगरो मे हर रात बम बरसाये जाते

है और जिन्हे एक प्रथम श्रेणी के शक्तिशाली राष्ट्र की लायी हुई आधुनिक भयकरता का सामना करना पडा है। पिछले दो-तीन महीनो मे लदन को वमवारी से वहुत भारी नुकसान हुआ है, लेकिन उस चुगकिग का खयाल कीजिए जो वरसो से वमवारी सहकर भी अवतक जी रहा है। हम उस मुसीवत का अन्दाज नही लगा सकते, और न हम उस दृढ सकल्प और चिरस्मरणीय साहस को नाप सकते है जिससे उन्होने इन विपत्तियो और सकटो का विना विचलित हुए और विना झुके मुकावला किया है। इतिहास के उषाकाल से आजतक चीनवासियो के गौरवशाली इतिहास मे कई गौरवशाली युग आये और अच्छे-अच्छे काम हुए है। लेकिन निश्चय ही पिछले तीन साल तो इस महान् इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगे।

इन वर्षो मे भूतकाल वडे वेग से वर्तमान मे वदला है और आनेवाले युग की तैयारी हो रही है। राष्ट्र के सकट की आग मे तलछट और खण्डहर जल रहे है और शुद्ध धातु निकल रही है। भारत मे भी हमने इन सकटो और परीक्षणो में अपना भाग लिया है और निकट भविष्य में और भी लेने की वहुत कुछ सभावना है। तो, जो राष्ट्र सो रहे थे, या गुलामी में पडे हुए थे उनका अव पुनर्निर्माण हो रहा है, चीन और भारत में नवयौवन आ रहा है।

भविष्य में दोनो को वहुत वडा कार्य करना है। इसलिए दोनों को साथ रहना चाहिए और एक दूसरे से सीखना चाहिए।

नवम्वर, १९४०

चीन और स्पेन

: १ :

नया चीन

खबरो की एजेंसियाँ हमे यूरप की खबर देती है और बताती है कि हिटलर क्या कहता है या नेविल चेम्बरलेन किस बात से इनकार करते है, मगर चीन के बारे में हमें कोई खबर ही नही मिलती। हाँ, कभी-कभी इतना ज़रूर सुन लेते है कि हवाई हमला हुआ और उसमे सैकडो-हजारो लोग मारे गये। यह भी हमारी बहुत-सी बदकिस्मत बेबसियो में से एक है कि विदेशों की खबरे पाने के लिए हमें करीब-करीब एकदम ब्रिटिश एजेंसी पर निर्भर रहना पड़े, जो खबरों को हमारे दृष्टि-कोण से न देखकर निश्चय ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से देखती है। उसके लन्दन के दफ्तर तै करते है कि क्या (खबर) पाने में हमारी भलाई है, और उसका थोड़ा-सा कटा-छँटा हिस्सा रोज़-ब-रोज़ हमारे पास भेज दिया जाता है। लार्ड ज़ैटलैण्ड या और कोई साहब जो कुछ कहते है, वह मजेदार हो सकता है, लेकिन दुनिया की खबर महज़ वही तो नही होती। मगर रायटर का अब भी खयाल है कि हम भारत-मंत्री के दफ्तर के बड़े अफसरो के मुँह से निकले सुनहले शब्दो की उत्सुक होकर बाट जोहा करते होगे; और उधर दुनिया की वह असली खबर जिसके जानने को हम उत्सुक होते है, हमे दी नही जाती।

जो कोई आदमी पूरब मे मलाया या जावा गया है, वह जानता है कि वहाँ और हिन्दुस्तान मे मिलनेवाली खबरो मे जमीन-आसमान का फर्क है! वहाँ क्या चीन, क्या सुदूर पूर्व, क्या अमरीका और क्या यूरप— सबकी ताजी खबरे ही क्यो, नया दृष्टिकोण भी पहुंचाया जाता है और

रायटर से खबरे पाते रहने के बाद यह तबदीली अच्छी लगती है। वे ताज़ा खबरे अमरीका की एजेंसियो के ज़रिये मिलती है जो बदकिस्मती से हिन्दुस्तान में नही पहुँचने पाती।

इसलिए चीन के बारे मे हिन्दुस्तान मे हमे खबरे मिलती ही नही। दरअसल खबरो की कमी नही है बशर्ते कि हम उन्हे पा सके। आज चीन हर मानी में 'समाचार'-रूप बना हुआ है।

चीन स्वय समाचार इसलिए भी है कि जो-कुछ वहाँ हो रहा है उसका दुनिया के लिए, एशिया के लिए और हिन्दुस्तान के लिए बडा महत्त्व है। चीन दुनिया के खास मुल्को मे से एक है और तमाम दुनिया को देखते हुए यूरप के छोटे-छोटे लडाका देशो की बनिस्बत उसका महत्त्व ज्यादा है। हर हालत में एशिया और हम हिन्दुस्तानवालो के लिए चीन और उसके भविष्य का विशेष महत्त्व है।

चीन इसलिए भी समाचार है कि वहाँ जापान की फौजो ने बडी खौफनाक बरबादी ढायी है। क्या हम समझते है कि हम जो छोटी-मोटी खबरे पढा करते है उनका असली मतलब क्या होता होगा? उनका मतलब होता है बडे-बडे शहरो पर रोज़ाना बमबारी, लाखो का खून और मौजूदा लडाई के तरीको की बेरहमी और हैवानियत।

लेकिन सबसे ज्यादा समाचारवाला देश वह अपने वीरतापूर्ण मुकाबले की वजह से है और इसलिए भी है कि उसने अपनी मुश्किलो को बडी बहादुरी के साथ हल किया है। सिर्फ एक महान् राष्ट्र ही ऐसा कर सकता था—महान् राष्ट्र इसलिए नही कि उसने भूतकाल में बडे-बडे काम किये है, बल्कि इसलिए कि उसने भविष्य में अपना दावा कायम कर दिया है। इस बदलती हुई दुनिया में भविष्य-वाणी करना मुश्किल है, लेकिन हरेक बात यही ज़ाहिर करती है कि मौजूदा सकट मे चीन की

जीत होगी। जहाँतक फौज का ताल्लुक है, चीन दो वरस की लडाई के बाद भी आज लडाई शुरू होने पर जितना मजबूत था उससे कही ज्यादा ताकतवर है। वह मजबूत हो गया है, सगठन उसका बढ गया है और उसकी साधन-सामग्री भी अच्छी हो गयी है। लडाई के कुछ ऐसे तरीके भी उसने निकाल लिये है जो उसके लडाई मे कमजोर होने और वडी-वड़ी खाली पडी हुई जगहो ही के खयाल से मुनासिव है। चीनी लोगो मे हौसला बहुत ज्यादा है और सिपाही और किसान एक मकसद लेकर साथ-साथ आगे वढते है। वहुत-से पुराने सेनापति, जो डरपोक, समझौते के लिए तैयार व अयोग्य थे, उनकी जगह तजुर्वेकार जवान लोग आ गये है। शुरू मे ये पुराने लोग राजनीतिक दृष्टि से हटाये जाने लायक नही थे, लेकिन जव वरवादी हुई और उनकी नाकाविलीयत ज़ाहिर हुई तो उन्हे हटना पडा। आज विदेश के फौजी हलको में यह बात सव अच्छी तरह से जानते है, और ऐसे लोगो मे जर्मन सेनापति भी शामिल है, कि अगर कोई गैरमामूली वात न हो गयी तो चीन की जीत होगी—देर भले ही उसमे लग जाये। चीनी लोग और उनके नेता काम को कम मानकर नही रह जाते, वे तो दूरदेशी से कहते है कि जहाँतक उनका सवध है लडाई तो अभी शुरू ही हुई है।

ऐसी कौनसी असाधारण घटना हो सकती है जो चीन की कामयावी के मौको को खतरे में डाल दे? यह तो वहुत ही नामुमकिन है कि चीन के प्रतिरोध को कुचलने मे जापान अकेला रहकर ही कामयाव हो सके, लेकिन अगर सयुक्तराष्ट्र अमरीका या इग्लैण्ड जानवूझकर चीन-विरोधी नीति अख्तियार करते है तो उससे फर्क पड सकता है। लेकिन सयुक्तराष्ट्र ऐसा नही करेगा, क्योकि ऐसा करने से वह अपनी तमाम सुदूर पूरव की नीति के खिलाफ जावेगा। और इग्लैड? मि० नेविल चेम्वरलेन

का यह इग्लैड कुछ भी कर सकता है। कुछ भी हो, आज तो वह निश्चित रूप से चीन के पक्ष मे है। कल वह क्या हो जायेगा, यह सिर्फ मि० चेम्बरलेन ही जानते है।

इस लडाई, इस हैवानियत और इस मारकाट के पीछे चीन मे कुछ ऐसा हो रहा है जिसका महत्त्व है। एक नये चीन का निर्माण हो रहा है जिसकी जडे उसकी अपनी ही सस्कृति मे जमी हुई है और सदियो के आलस और कमजोरियो को दूर करके अब एक मजबूत, सुसगठित और आधुनिक चीन उठ रहा है, जिसकी दृष्टि मनुष्यता की होगी। सकट के इन बरसो मे चीन ने जो एकता प्राप्त करली है, वह आश्चर्यजनक और प्रेरणा देनेवाली है। वह एकता सिर्फ अपने बचाव के लिए ही नही है, बल्कि वह एकता काम करने और अपना निर्माण करने के लिए भी है। लडाई के मोर्चों के पीछे चीन के समुद्री किनारे के पिछले प्रदेशों मे बडी-बडी योजनाएँ अमल मे आ रही है जो देश की सूरत ही बदले डाल रही है। हवाई जहाजो से बमबारी के लगातार खतरो के होते हुए भी उद्योग-धन्धो मे बढती हो रही है और खास दिलचस्पी की चीज तो यह है कि तोपो की कान फोड डालनेवाली आवाजो के बीच भी छोटे-छोटे और घरेलू उद्योगो के लिए सहकारिता की योजना बनने जा रही है। इन घरेलू और छोटे उद्योगो से एक बडा फायदा यह है कि वीरान हिस्सो मे उन्हे जल्दी से चालू किया जा सकता है और खतरे के मौके पर उन्हे हटाया भी जा सकता है।

यह है नया चीन जिसका लडाई के धुएँ और बरबादी के बीच बेमिसाल पैमाने पर निर्माण हो रहा है। हमे उससे बहुत-कुछ सीखना है।

१५ जून, १९३९

: २ :

चीन में

कुछ महीने हुए एक मित्र ने मुझसे कहा कि तुम हमेशा गयी-गुज़री बातो में फँसे रहते हो। उनसे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर चर्चा चल गयी थी और उन्हे बीती हुई बातो से मेरा लगाव होना पसन्द न था। मंचूरिया, अबीसीनिया, चेको-स्लोवाकिया और स्पेन यह सारी-की-सारी बदकिस्मती और बर्बादी की दर्दनाक कहानी है और मैं हमेशा गलती का पक्ष लेता हुआ दिखाई दिया। वे तो यथार्थवादी नीति के हामी थे इसलिए उन्होंने कहा कि उन देशो से दोस्ती रखी जाये कि जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से ऊँचे दर्जे के है, या कम-से-कम उन्हे बहुत ज्यादा नाराज़ तो नही किया जाये।

मैंने माना कि उन्होने जो दोषारोपण किया है,उसका मै अपराधी हूँ, हालाँकि यह मानने के लिए मै तैयार नही हूँ कि मै यथार्थवादी नही हूँ।

इस चर्चा से हमारे सामने यह सवाल आता है कि यथार्थवाद या वास्तविकता क्या है? क्या मौके से थोड़ी देर का फायदा उठा लेना ही इसकी कसौटी होनी चाहिए। या कोई दूरदेशी का दृष्टिकोण हमें सामने रखना चाहिए? क्या सिद्धान्तो और आदर्शो की और भी कोई बुनियादी कसौटियाँ है या हम सिर्फ बाज़ारू भाषा में ही उनकी बात सोचे? हमारी इस मौजूदा दुनिया मे जिसमे किसी भी देश के लिए अब यह मुमकिन नही रहा कि वह अलग रह सके और जहाँ हरेक राजनैतिक सकट से दूसरे सुदूर देशो में हलचल मच जाती है, क्या हम केवल एक ही राष्ट्र

की बात सोच सकते है ? डान्जिग के मामले को ही लीजिए। आज उसने यूरप भर को हिला दिया है और तमाम दुनिया के कान उधर है। कारण यह है कि डान्जिग महज डान्जिग ही नही है, बल्कि वह एक कभी न रुकनेवाला सघर्ष है जो हमारी आज की दुनिया को खाये जा रहा है।

अपने बीते हुए और मौजूदा ताल्लुकात पर मुझे कोई पछतावा नही है और मुझे इस बात का फख्र है कि भले ही स्पेन आज पैरो तले कुचल डाला गया है पर जरूरत के वक्त हिन्दुस्तान ने उसका साथ दिया और मै तो अब भी बडी आशावादिता के साथ विश्वास करता हूँ कि प्रजातन्त्रीय स्पेन और चेको का प्रजातन्त्र जिनका उनके साथियो ने ही दगा देकर काम तमाम कर दिया है, फिर कभी-न-कभी उठ खडे होगे। हो सकता है कि यह मेरी खामखयाली ही हो, फिर भी मै उनकी हिमायत करूँगा, क्योकि मै देखता हूँ कि उनमे मैने जिन्दगी की वे कीमती बाते पायी कि जिनके लिए हिन्दुस्तान मे हमने इतना पसीना बहाया है। अगर मै इनको छोड दूँ तो हिन्दुस्तान मे किसको अपनाऊँ ? और फिर वह आजादी कैसी होगी, कि जिसके लिए हम इतनी कशमकश कर रहे है।

मै चीन जाता हूँ, क्योकि वह महान् देश सैकडो तरह से मुझे अपनी तरफ खीच रहा है। लेकिन हमारे यहाँ जो सकट पैदा हो गया है उसमें स्वदेश से रवाना होने की मेरी मर्जी होती नही, लेकिन सकट तो भारत और दुनिया मे हमेशा ही बना रहता है और हमारी भावनाएँ इतनी मर गयी है कि उसकी वकत नही कर सकते। तलवार की धार पर हम बैठे है, हम मुश्किल से सध पा रहे है और घटनाओ का दौरदौरा शुरू होने की बाट जोह रहे है। लडाई शुरू होगी या क्या ? हेर हिटलर क्या कहता है ? सिन्योर मुसोलिनी कहाँ है ? डान्जिग, टिंटसिन या हागकाग मे क्या हो रहा है ? मि० चेम्बरलेन क्या कही मछली मारने चले गये

है ? लेकिन डगमगाती किश्ती थोड़ी देर के लिए थमती है और जितनी देर थमी रहती है, हमे अपने काम पर लग जाना होता है।

बहुत दिनो की हिचकिचाहट के बाद मैंने चीन जाना तै कर लिया। चीन जाना मैंने इसलिए तै किया कि वह दूर है तो भी हवाई सफर ने उसे हमारे बहुत पास ला दिया है और दो-तीन दिन मे हम वहाँ पहुँच सकते हैं। वहाँ जाना भी आसान है और जरूरत आ पडे तो फौरन लौटा भी जा सकता है। हालाँकि मुझे हिचकिचाहट हो रही थी; लेकिन मैंने जाना ही तै किया, क्योंकि चीन के साथी हाथ से इशारा करके मुझे बुला रहे थे और अतीत की स्मृतियाँ मुझे जाने के लिए प्रेरित कर रही थी। भारत और चीन की वेदना और विजय का लम्बा इतिहास मेरी आँखो के सामने आ गया और मौजूदा मुसीबते अरब लोगों की तरह अपने डेरे-डण्डे उठा-उठाकर चुपचाप चली जा रही हैं। वर्तमान भी बीतेगा और भविष्य में विलीन हो जायेगा। और भारत बना रहेगा, चीन भी बना रहेगा और अपनी और दुनिया की भलाई के लिए दोनों मिलकर काम करेंगे।

चीन जाने की एक वजह और भी है। चीन ने आज़ादी की लड़ाई मे जो गौरवपूर्ण साहस दिखाया है उसका और उस दृढ निश्चय का वह प्रतीक है जो अकथ आपदाओ और अद्वितीय संकटो में भी अमिट रहा है और अपने शत्रु के मुकाबले के लिए उसने जो एकता दिखायी, उसका भी वह प्रतीक है। मै उसको श्रद्धांजलि देने और उसका अभिनन्दन करनें जा रहा हूँ।

दोस्तो ने मुझे आ सकनेवाले खतरों की चेतावनी दी है। उन्होने मुझपर ज़ोर डाला है कि मै इस पागलपन के दुस्साहस को छोड़ दूँ! लेकिन, अगर हमारे लाखो फ़ौजी भाई इन खतरों को बहादुरी से उठा

रहे है, तो निश्चित रूप से एक भारतवासी को भी उनका हाथ बँटाना चाहिए। हम खतरो से इतने नही डरते है कि उनसे दूर-दूर भाग। उम्र मेरी बीतती जा रही है; लेकिन खतरे उठाने की प्रेरणा अब भी मेरे अन्दर है। क्या मेरे मित्र मुझे इस पौष्टिक दवा और इस खुशी से महरूम रखना चाहते है ?

चीन मै जा रहा हूँ, पर दिल मेरा भारी-भारी है कि इन वर्षों मे पसीना बहाकर जो कुछ हमने खडा किया था, वह सब ढह पडता दीखता है। छिपी बुराइयाँ तमाम अपने-अपने बिलो से निकलकर सिर उठा रही है और जिस रास्ते पर हम गर्व और आत्म-विश्वास के साथ चले थे, उसपर अजनबी और मनहूस शक्ले हमला करती दिखाई दे रही है। साहस और बलिदान की भावना मानो अब जाती रही। न एक-दूसरे में विश्वास ही बाकी बचा है और उनकी जगह कमीनापन व लडाई-झगडे लोगो में घर कर गये है और वे एक-दूसरे पर बुरी तरह से सन्देह करने लगे है। हम अपने आपको ही भूल गये है।

लेकिन अपने आपको हम फिर पा लेगे और बुराई का आमने-सामने मुकाबला करेगे और मार-मारकर उसका दम निकाल देंगे। लडाई में हम फिर पडेगे। भारत के लिए हमारे हृदयो मे भरा प्रेम और देशवासियों को स्वतन्त्र करने की प्रबल इच्छा हमे आगे बढने में प्रोत्साहन देगी।

जा तो रहा हूँ, पर मेरा दिल भारत में बना रहेगा और जहाँ-कही मै जाऊँगा भारत का चित्र मेरे मन पर खिचा रहेगा। उस चित्र को मैने इस महाद्वीप के हजारो, हमेशा बदलती रहनेवाली शक्लो, रूपों और रगों में देखा है। लाखो परिचित चेहरे मुझे याद आयेगे—वे चेहरे जिनकी उत्सुक आँखों को मैने देखा है और यह जानने की कोशिश

की है कि उनके पीछे क्या-क्या छिपा है ? भारत और चीन मेरे दिमाग मे एक-दूसरे मे मिल जायेंगे और मुझे उम्मीद है कि मैं अपने साथ चीनियों का साहस, उनका अजेय आशावाद और अपने सामने खड़ी हुई मुसीबत के समय कधे-से-कधा भिडाकर सोचने की शक्ति अपने साथ लाऊँगा।

१८ अगस्त, १९३९

: ३ :

चीन-यात्रा के संस्मरण

चीन की यात्रा मे मैने हरेक शाम को दिनभर की घटनाओ और अनुभवो को लिखते जाना शुरू किया। पहले भी डायरी रखने का शुभ सकल्प मैने कई मर्तबा किया था; पर दूसरे कई अच्छे इरादो की तरह यह सकल्प भी बहुत जल्द निर्बल पड गया; लेकिन इस बार मैने सोचा कि अपने अनुभवो को उनके ताजे रहते लिख डालना अच्छा है, ताकि हिन्दुस्तान के अपने दोस्तो और साथियो को भी उसका आनन्द ले लेने दूं। इसलिए मैने शुरू तो किया, मगर दिमाग मे यह बात जरूर थी कि मै यह सिलसिला जारी नही रख सकूँगा। कलकत्ते से जिस दिन रवाना हुआ उसी साँझ को अपने अनुभवो की पहली लेखमाला मैने सेगोन से भेज दी। पहले दिन मै कुनमिग पहुँच गया और उसदिन थका हुआ था, तो भी दूसरे दिन का वर्णन लिख लिया और अगले दिन बडे तडके उसे डाक मे डलवा दिया। मै चुगकिग पहुँचा और उस रात को फिर बडी देर तक बैठा लिखता रहा। इसी तरह चौथी रात को भी लिखता रहा। लेकिन ये दोनो पिछले लेख हिन्दुस्तान नही भेजे गये। कुछ तो इसका कारण यह था कि मैने सोचा कि दिनभर के व्यस्त व भारी कार्यक्रम के वाद रोजाना लिखने का नियम पालन करना बड़ा मुश्किल है और कुछ कारण यह था कि मेरे वर्णन या सस्मरण हवाई डाक से भी हिन्दुस्तान बडी देर से पहुँचेंगे और फिर उन दिनो चुगकिग मे लडाई के कारण पत्रो पर सेसर था। हालाँकि जो कुछ मै लिखता था सेसर को उसपर कोई ऐतराज हो नही सकता था, फिर भी इस सब सोच-विचार के बाद

मैंने यह तै किया कि इस तरह का लिखना बन्द कर दूं। लेकिन असल मे ठीक-ठीक सबब तो यही था कि मुझे वक्त नही मिलता था।

सिर्फ चार रात तक तो मैंने लिखा, लेकिन बाद मे अपने ऊपर लदा हुआ यह काम मैंने छोड दिया। लेकिन घटनाएँ एक के बाद एक घटित होती गयी और नये-नये अनुभव दिमाग मे भरते गये। मैंने अपना अधिकाश वक्त चुगकिंग मे बिताया और फिर चुंगतू गया। मेरा इरादा तो दूसरी कई जगहे देखने का था—खास करके उत्तर-पश्चिम को तो—जहाँ कि एट्थ रूट आर्मी (Eighth Route Army) ने जापानी फौजो को रोक लिया था—मै देखना ही चाहता था। फिर अपना काग्रेस का डाक्टरी दल भी तो था। वहाँ जाकर उसका काम देखने की भी मेरी इच्छा थी ही। लेकिन यह सब नही होना था। जब मै चुगतू मे था मेरे पास एक सन्देश पहुँचा—पहले-पहल मुझे काफी अचरज हुआ कि वह ब्रिटिश ब्राडकास्ट के जरिये पहुँचा—कि राष्ट्रपति ने मुझे शीघ्र स्वदेश मे बुलाया है। मै फौरन चुगकिंग को लौट पडा और हिन्दुस्तान आनेवाले एक हवाई जहाज मे जगह पाने की कोशिश की। इस कोशिश मे कामयाब न हो पाया, तब चीन सरकार ने मेरी मदद की और मुझे एक उम्दा डगलस कपनी का हवाई जहाज दिया जो मुझे तीन ही घंटे मे लाशियो ले आया। यह बर्मा की सरहद पर है। इरादा मेरा था कि नयी ब्रह्मा सडक से लौटूंगा, मगर हुआ यह कि मुझे उसके ऊपर उडकर आना पडा।

तो, तेरह दिन मे मैंने इस महान् देश की यात्रा समाप्त की। ये तेरह दिन बडे व्यस्त रहे और मै चाहता तो क्या-क्या दृश्य मैंने देखे, किन-किन लोगो से मै मिला, क्या-क्या मैंने अनुभव किया—यह सब लिखकर आसानी से एक किताब तैयार कर सकता था। मैंने पाँच हवाई

हमले देखे—जबकि मै खोदी हुई अँधेरी गुफा मे बैठा था, लेकिन कभी-कभी आसमान में होनेवाली लड़ाई को देखने के लिए झाँक लेता था। जापान के बम बरसानेवाले हवाई जहाज सर्चलाइट की किरणो से देख लिये जाते थे। वे जहाज आसपास के अँधेरे मे बडे तेज चमकते थे और पीछा करनेवाले चीनी हवाई जहाजो के हमले से बचने की कोशिश करते थे। जब सरपर मौत मँडरा रही थी तब मैने भी देखा कि चीनी गिरोहो मे आश्चर्यजनक शाति से काम हो रहा है। लडाई की भयानक सरगर्मी के बावजूद मैने देखा कि नगर मे जिन्दगी की चहल-पहल साधारण गति से हो रही है। मैने फैक्टरियाँ देखी, गर्मियो के स्कूल देखे, सैनिक शिक्षणालय देखे, जवानो के डेरे देखे, और देखे शिक्षणालय—जो मानो अपनी पुरानी जड से उखड़कर बाँस के छप्परो मे आगये थे और नया जीवन और बल पा रहे थे। गाँवो की सहयोग-सभा के आन्दोलन और घरेलू धन्धो की उन्नति ने मुझे बडा लुभा लिया। मै विद्वानो से, राजनेताओं से, सेनापतियो से और नवीन चीन के नेताओ से मिला और सबसे ज्यादा बढकर तो मुझे चीन के सर्वश्रेष्ठ नेता और अधिनायक, प्रधान सेनापति च्याग-काई-शेक से कई मर्तबा मिलने का सुअवसर मिला। चीन के सगठित होने और अपने आपको स्वतन्त्र करने के दृढ सकल्प को मैने उनमे मूर्त्तिमान् देखा। यह भी मेरा सद्भाग्य था कि मै उस देश की सर्वश्रेष्ठ महिला श्रीमती च्याग से मिला जिनसे राष्ट्र को लगातार प्रेरणा मिलती रही है।

लेकिन चाहे मै वहाँके प्रमुख और प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषो से मिला, पर कोशिश मेरी हमेशा यही रही कि मै चीन के निवासियो को समझ सकूँ और उनसे कुछ प्रेरणा ले सकूँ। मैने उनके विषय में और उनके गौरवपूर्ण सास्कृतिक इतिहास के सम्बन्ध में बहुत पढा था और मै उस वास्त-

विकता को देखना चाहता था। वास्तविकता मेरी आशा के अनुकूल ही निकली—मैंने उस जाति को विज्ञ, गंभीर और अपने महान् अतीत के अनुकूल बुद्धिमान ही नहीं पाया, बल्कि मैंने पाया कि वे बड़े बलिष्ठ जीवन और शक्ति से परिपूर्ण लोग हैं—और आधुनिक परिस्थिति से सामजस्य स्थापित करनेवाले हैं। बाजार में जाते हुए मामूली आदमी के चेहरे पर भी हजारों वर्षों की संस्कृति की छाप है। कुछ हद तक मैंने यही आशा बाँधी थी। लेकिन मुझे जिसने सचमुच प्रभावित किया वह नवीन चीन की अद्भुत शक्ति थी। सैन्य-बल का मै कोई पारखी नहीं था, पर मैं यह कल्पना तक नहीं कर सकता कि ऐसी जीवनी शक्ति और सकल्पवाली और युग-युग का बल अपने पीछे रखनेवाली वह जाति कभी कुचली जा सकती है।

हर जगह मुझे विपुल सद्भावना और आतिथ्य मिला और मुझे शीघ्र ही विदित होगया कि व्यक्तिगत महत्त्व से यह वस्तु बड़ी है। मुझे भारत का, काग्रेस का, प्रतिनिधि समझा गया हालाँकि मेरी ऐसी कोई हैसियत नहीं थी, और चीनवासी इस बात के लिए उत्सुक और उत्कण्ठित थे कि भारतीयों से मित्रता करे और सम्पर्क बढ़ायें। यह भी तो मेरी हार्दिक इच्छा थी। इसलिए इससे ज्यादा खुशी की बात मुझे और क्या हो सकती थी ?

इस तरह १३ दिन बाद मैं लौट आया—विवश होकर, लेकिन उसे लाजमी समझकर, क्योंकि भारत का बुलावा उस संकट के समय मे अनिवार्य था। लेकिन वह मेरा छोटा-सा प्रवास सचमुच मेरे ही लिए नहीं, हिन्दुस्तान और चीन के लिए कीमती होगया है।

एक अफसोस मुझे रहा। मै मेडम सन यात-सेन से न मिल सका, कि जो तबसे चीन की क्रांति की जीवन-ज्योति और आत्मा बनी हुई है

जबसे कि उस क्राति का वह विधायक उठ गया। मैने उनसे १२ बरस पहले आध घण्टे मुलाकात की थी, तबसे मेरी इच्छा रही थी कि मै उनसे फिर मिलता मगर बदकिस्मती से वे उस समय थी हागकाग मे और मै उस तरफ न जा सका।

१

२० अगस्त, १९३९

बमरौली हवाई-अड्डे पर हमें बहुत देर इन्तज़ार करना पडा। इस तरह का इन्तजार करना बडा बुरा लगता है और कुछ-कुछ उससे झुंझलाहट भी होती है। उस वक्त ठीक-ठीक यह भी तो मालूम नही होता कि क्या किया जाये या किस तरह से किया जाये ? बहुत देर तक विदाई होते रहना भी बबाल हो उठता है। आखिरकार एयर फ्रास लाइनर आया,और तरीके से उतरा। जहाज आने के बाद भी चालीस मिनट फिर रुकना पड़ा। ड्राइवर और दूसरे राहगीरो ने खाया-पिया। और भी झुंझलाहट हुई।

दोपहर को १-३५ पर हम रवाना हुए। जहाज अच्छी तरह से चला। थोडी देर बाद हम बनारस पहुँचे और शहर का अच्छा दृश्य देखा। फिर मै सो गया। बडी अचरज की बात है कि मै हवाई-जहाज में न जाने कितना सोता हूँ। यह तो शायद कुछ-कुछ पिछली थकान और कम सो पाने का नतीजा था। लेकिन कुछ हवाई जहाज के चलने और हिलने-डुलने से भी नीद आ जाती है। कलकत्ते तक के सफर में करीब-करीब मै सोता रहा। एक बार चौक कर उठा, तो देखा कि हम लोग पहाडी जगलो के देश मे नीचे उड़ रहे है। कभी-कभी हम किसी पहाड़ी की चोटी के ऊपर होकर निकल जाते थे। पहाडी की

शक्लें अजीव हैं, और तमाम देश एक अपरिचित-सा—कलकत्ते जानेवाली ट्रेन से हम जो कुछ देखते हैं, उससे बिलकुल निराला ही—दिखाई देता है। कुछ समझ में नहीं आता, कहाँ हैं? लेकिन पता लगाने का कोई जरिया हमारे पास नहीं है और नींद इतनी लग रही है कि कौन तकलीफ़ करे? गालिबन् हम लोग पूर्वी बिहार के ऊपर उड रहे होंगे। बड़ी तेज हवा सामने से आरही है। इससे चाल कम हो जाती है। यों इलाहाबाद से कलकत्ते तक का सफर अच्छी हालतों में ढाई घंटे का होता है और अक्सर तीन घंटे तक लग जाते हैं। पर अब तो उसमें साढ़े तीन घंटे लगते हैं। दमदम हम पाँच बजने के थोड़ी ही देर बाद पहुँचे। कलकत्ता साढ़े पाँच पर।

कलकत्ता

कलकत्ते में अपने दोस्तों को मैंने जानबूझकर अपने आने की खबर नहीं दी थी। थोड़े-से घंटों के लिए दौड़-धूप कराने से फायदा भी क्या? खास तौर से ऐसी हालत में जब कि जहाज के और साथी मुसाफिरों के साथ होटल में ठहरने का मेरा इरादा था। इन हवाई जहाजों से सफर करने में उनके होटलों में जाना और उनके सुपुर्द रहना हमेशा सबसे अच्छा होता है, क्योंकि सवेरे बहुत जल्दी उठना पड़ता है। अगर कोई अपने मित्र के यहाँ ठहरे तो लेट होने और दूसरों को भी लेट करने का और शायद कभी-कभी जहाज छूट जाने तक का खतरा रहता है। इसलिए कम्पनी होटल का भाड़ा भी टिकट में शामिल कर लेती है।

चीन के कौंसल-जनरल (प्रमुख राजकीय प्रतिनिधि) को मैंने अपने कलकत्ते से गुज़रने की खबर दे दी थी; क्योंकि मैं उनसे मिलने की उम्मीद करता था। वह हवाई-अड्डे पर अपने और दूसरे चीनी दोस्तों के साथ मौजूद थे और यह देखकर अचरज हुआ कि वहाँ पत्र-

प्रतिनिधियो और दूसरे आदमियो की भीड-सी लगी है।

मुझे पता चला कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर कलकत्ते मे है। यह एक अच्छा मौका था, जिसे मै क्यो खोता ? क्योकि गुरुदेव से मिलना तो हमेशा बड़ी खुशी की बात होती है। अपने होटल से मै फौरन ही उनके घर पहुँचा और थोडे से वक्त मे उन्होने एशिया की सस्कृतियो के सगम पर बात की और बताया कि क्यो हिन्दुस्तान को पूर्वी देशो से सम्पर्क बढाना चाहिए।

इस बात से वह खुश थे कि मै चीन जारहा हूँ। उन्होने ज़ोर देकर कहा कि जापान भी जाना, खास तौर से जापानियो से यह कहने के लिए कि वे आजकल चीन में जो काम कर रहे है, उसमे अपनी आत्मा को न गिराएँ। वह इस बात के लिए इच्छुक थे कि हम जापान और जापान की निस्बत अपनी स्थिति साफ-साफ प्रकट करदें। जापान के सैनिकवाद और साम्राज्यवाद और आतक की, जो उन्होने चीन में फैला रखा है, हम सख्त मुखालफत करते है, लेकिन जापानियो के प्रति हमारी कोई दुर्भावना नही है। उनके साथ हम दोस्ती करना चाहते है, लेकिन इस गलत बुनियाद पर नही। चीन की मुसीबत तो खौफनाक थी ही, जापान का नुकसान भी कम नही था और यह हैवानियत-भरा साम्राज्यवाद उनकी आत्मा को ऐसी चोट पहुँचा रहा है, जो हमेशा बनी रहेगी।

मैने उन्हे यकीन दिलाया कि मै जापान जाना बहुत चाहता हूँ। बहुत दिनो से मै जापान जाना चाह रहा हूँ, लेकिन इस वक्त वह मुश्किल ही दीखता है, क्योकि उसमे वक्त बहुत ज्यादा लगेगा। राष्ट्रीय चीन को पार करके मै कई मोर्चो पर होकर तो जापान के अधीन भागो मे पहुँच नही सकता। मुझे हागकाग वापस आना होगा

और फिर वहाँसे सीधे समुद्र से या हवाई जहाज से जापान जा सकूँगा। इसमें हिन्दुस्तान से जितने दिन बाहर रहने की बात थी, उससे कहीं ज्यादा दिन लग जायेंगे। इसके अलावा मुझे अपनी ताकत पर भरोसा नहीं है कि मैं जापान की सरकार को अमन-चैन के और जन-तंत्रीय तरीके अख्तियार करने के लिए राजी कर सकूँगा। और असल में उस वक्त जापान की सरकार से मिलना भी मुमकिन नहीं था।

चीनी कौंसल-जनरल आये और मुझे अपने स्थान पर ले गये। वहाँ से हम एक चीनी होटल मे गये, जहाँपर कलकत्ते के दो दर्जन चीनी लोग दावत के लिए जमा हुए थे। मुझे एक खूबसूरत रेशमी झण्डा भेंट किया गया, जिसपर चीनी जबान मे कुछ लिखा था। उसमें मेरा हार्दिक अभिनन्दन किया गया था और आगे के सफ़र के लिए शुभ कामनाएँ की गयी थीं। मुझसे साफ-साफ और कुछ माफी-सी माँगते हुए कहा गया कि दावत बहुत मुख्तसिर है, ताकि मुझे देर न हो। चीनियो का भोजन मुझे पसन्द है, पर उनकी दावतों से मुझे डर लगता है। उनका हल्का खाना तक इतना भारी और देर तक चलनेवाला हो जाया करता है कि मुझसे तो बर्दाश्त नही हो सकता। दावत बढ़िया हुई, सात बार परोसा गया, और जब मै आनन्द से खारहा था, तब अचानक चीनी दावतों के खत्म न होनेवाले सिलसिले की चर्चा सुनकर मैं सहम गया।

वह खुशगवार दावत आपस मे सद्भावनाएँ प्रकट करने कराने के बाद खत्म हुई और मैं झटपट अपने होटल में लौट आया। थोड़ी-सी चिट्ठियाँ लिखीं, फिर कुछ दूसरे इन्तज़ाम। इधर आधीरात का घंटा बजा और उधर मैं सोया। मुझे खबर दी गयी थी कि हमे तीन बजे बुलाया जायेगा, और ३,-४० पर हमें होटल से चल देना होगा। ऐसा

वक्त हवाई सफर का मज़ा बहुत कुछ किरकिरा कर देता है। फिर अगर सफर करते हुए कोइ ओघने लगे तो कोई ताज्जुब नही होना चाहिए। इस तरह पहला दिन बीता।

२

२१ अगस्त, १९३९.

चीनी कौसल-जनरल और दूसरे दोस्त सवेरे साढे तीन बजे होटल में आये। हवाई अड्डे पर इतने सवेरे कलकत्ते के अपने दोस्तों और साथियों की भीड-की-भीड़ देखकर मुझे अचरज हुआ। उनमें बहुत से मुझसे नाराज़ हुए कि मैने पहले से अपने आने की खबर क्यो नही दी ?

सुबह साढे-चार बजे हमारा जहाज चला और मुझे अपनी आराम-कुर्सी पर नीद आने लगी। पौ फटी, मैने जगकर देखा कि समुद्र में विलीन होते हुए बगाल की झलक दिखाई देरही है।

अक्याब

सुबह कोई सात बजे हम अक्याब पहुंचे। मैने देखा कि वहांके हिन्दुस्तानी मेरा स्वागत करने के लिए इकट्ठे है। दिल्ली रेडियो से उन्हे मेरे आने की खबर मिल गयी थी। वहांसे हमें आधा घटे ठहरकर चलना था। मुझे फिर नीद आ गयी। और कुछ देर बाद एक कॅपकॅपी के साथ फिर नीद खुल गयी। साफ है कि हम बहुत ऊंचाई पर उड रहे थे और बादल हमसे बहुत ऊपर थे। बादलों को छोडकर कुछ नजर नही आता था।

बैगकॉक

बेगकॉक हम लोग अपनी घडियों से बारह बजे के करीब पहुँचे; लेकिन बेगकॉक में उस वक्त एक बजा था। खूबसुरत हवाई-अड्डा था और हिन्दुस्तानियो की बडी भीड मेरा स्वागत करने को

तैयार थी। उन्होंने मुझसे कहा कि कोई मील दो मील पर बहुत से हमारे देशवासी इकट्ठे हुए हैं और मेरे लिए वहाँ इन्तजार कर रहे हैं। झटपट मोटर से मैं वहाँ ले जाया गया और चन्द मिनटों तक भाषण देने के बाद मैं फिर लौट आया।

यह कहना गलत है कि हम लोग बैंगकॉक पहुँच गये। शहर तो हवाई-अड्डे से अठारह मील दूर था। आसमान से दूर पर उसकी कुछ झलक हमे मिल गयी थी।

स्याम के पत्रकार मुझसे मुलाकात करना चाहते थे। उनके कुछ सवालो का जवाब मैंने दिया। हिन्दुस्तानी चाहते थे कि मैं वादा करूँ कि वापसी सफर मे मैं जरूर बैंगकॉक ठहरूँगा। ठहरना तो मैं चाहूँगा। देश मुझे अपनी तरफ खीचता है और वह हमारा पास-पड़ोसी ही तो है। हवाई जहाज से सिर्फ सात घटे का रास्ता है। उस देश को स्याम नही कहा जाता। वह थाईलैण्ड—'आज़ाद लोगो का देश'—के नाम से मशहूर है। विदेशो मे भी हमें शीघ्र ही उसे थाईलैण्ड के नाम से पुकारना पडेगा।

बैंगकॉक के हवाई-अड्डे पर फूलो की जैसी खूबसूरत मालाएँ मुझे भेट की गयी, वैसी मैंने कभी नही देखी। और मालाओ में मेरे तरह-तरह के तजुरबे हैं। बडी चतुराई और कलात्मक ढंग से वे बनायी गयी थी। खूबी के साथ रगों का मेल उनमे किया गया था।

बैंगकॉक के पास जो हिन्दुस्तानी मुझे मिले, वे हिन्दुस्तान के जुदा-जुदा हिस्सो के थे; लेकिन ज्यादातर उत्तर-पश्चिम के थे। बहुत-से मुसलमान सिक्ख थे। इसलिए मैंने उनसे हिन्दुस्तानी में ही बातचीत की। जब मैं बैंगकॉक छोड रहा था, तभी सेगौन से बेतार की खबर आयी कि वहांपर हिन्दुस्तानी मेरे स्वागत की व्यवस्था कर रहे हैं।

सेगौन

बेंगकॉक के हवाई-अड्डे से हम दोपहर को १—४५ पर चल दिये। सफर मे कोई खास बात नही हुई। मुझे कुछ उम्मीद थी कि शायद हम अगकोर पर होकर गुजरें और उसके खण्डहरो की एक झलक मुझे देखने को मिल जाये, लेकिन वह पूरी न हुई। सेगौन पहुंचने से कुछ पहले हम एक बहुत बडी झील पर होकर गुज़रे। हो सकता है वहाँ बाढ का पानी इकट्ठा हो गया हो। कोई पाँच बजे हम सेगौन पहुँचे। हिन्दुस्तानियो की भीड मालाएँ और खूबसूरत गुलदस्ते लिये खडी थी। ज्योंही में जहाज से उतरा, एक हिन्दुस्तानी आगे बढे और उन्होने अच्छी फ्रेंच ज़बान मे मेरा स्वागत किया। उन्होने तो ज़ोरदार भाषण ही दे डाला। मैं परेशान था, क्योकि मुसाफिरो को चुगी के दफ्तर में जाना था। फौरन ही मैंने और भी महसूस किया कि जैसे मैं फ्रांस के किसी प्रान्त मे हूँ। भाषा, दुकानें, चौडी छायादार सडकें, गलियाँ, और अखबार बिकने व बैण्ड बजाने के स्थान इन सबसे मुझे वहाँ फ्रास की ही याद आयी, गाडी से मै शहर मे खूब घूमा, हालाँकि पानी पड रहा था। शहर बहुत खूबसूरत था। तेज़ रोशनी से जगमगा रहा था। और खास-खास दुकानों पर 'नियन' से होनेवाली रोशनी देखी। बहुत-सी फ्रेंच दुकाने भी वहाँपर थी। चीनियो का एक पूरा क्वार्टर ही था, और हिन्दुस्तानी दुकानो की खासी तादाद थी।

देखने मे इडोचीन मे कोई पाँच हज़ार हिन्दुस्तानी हैं, जिनमें से ज्यादातर मध्यम श्रेणी के लोग है और चौकीदार है, उनमें से अधिकाश तमिल देश के हैं। करीब-करीब सभी थोडी-बहुत फ्रेंच जानते हैं और बहुत से तो खूब बोल लेते हैं। हम लोग तो जैसा देश होता है वैसा ही भेष बना लेते है। हिन्दुस्तान मे हमने अग्रेजी को अपना लिया

हैं, और इण्डो-चीन मे फ्रेच को। सरकारी नौकरी मे भी वहुत से हिन्दुस्तानी दिखाई दिये। उनमें से ज्यादातर पाण्डचेरी के वाशिन्दे थे। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि पाण्डचेरी के वहुत से हरिजन यहाँ मजिस्ट्रेट हैं।

चीनी लोगो की तादाद तो वहुत हैं। मुझे वताया गया कि पढे-लिखो की तादाद यहाँ वहुत ज्यादा है, कोई ३० फी सदी, जिनमें से वहुत से फ्रेच जानते हैं। अनामी भाषा लेटिन लिपि में पढायी जाती है। पुराने चीनी अक्षरों का प्रयोग वहुत-कुछ छोड दिया गया है।

राजनैतिक जीवन यहाँ लोगो में नही और सार्वजनिक सभाओं जैसी चीज़ मुश्किल से ही कोई जानता हैं।

शाम को मुझे यहाँके नत्तूकोट्टै मन्दिर मे या मन्दिर की परिक्रमा में ले जाया गया। वहाँ वहुत से हिन्दुस्तानी इकट्ठे हुए थे। मुझे वर्मा और लंका मे भी पता चला था कि नत्तूकोट्टै मन्दिर ही अक्सर ऐसे जलसो के लिए काम मे लिया जाता है, क्योकि यहाँपर हॉल नही हैं। मुझे एक अभिनन्दन-पत्र भेट किया गया जिसका जवाव मैंने कुछ विस्तार से दिया।

यह देखकर खुशी होती है और अचरज भी होता है कि इन दूर पडे हिन्दुस्तानियो की वस्ती मे अपनी मातृभूमि के लिए इतना प्रेम और अभिमान हैं। वदकिस्मती से हमसे वे एकदम अलहदा हैं। हमें उनसे निकट सम्पर्क कायम करना चाहिए।

इन देशों का सफर करनेवाले मुसाफिर पर एक वात का असर पडता है वह है चीनियो और हिन्दुस्तानियो की भारी ताकत और हिम्मत। वहुत से चीनी और हिन्दुस्तानी दूर देश चले जाते हैं और विना किसी के अपनी ही मेहनत से खुशहाल हो जाते हैं।

इस तरह दूसरा दिन खत्म हुआ। मन मे इस विचार से बड़ा आनन्द आरहा है कि आज सुबह मैं कलकत्ते मे था और दिन में बर्मा और स्याम से होकर गुज़रा और अब मैं इंडो-चीन में हूँ।

३

. २२ अगस्त, १९३९

सुबह छ के बाद ही हम सेगौन से चल दिये और उडते-उडते बादलो से बहुत ऊँचे चले गये। हम बहुत ऊँचाई पर उड रहे होंगे, क्योकि सर्दी काफी मालूम देती थी। नीचे धरती हमें दिखाई नही देती थी और कभी-कभी बादल हमे घेर लेते थे और कुछ सूझता नही था। कोई पाँच घटे की उडान के बाद ग्यारह बजे हम हैनोय पहुँचे। एयर-फ्रास से सफर का अब अखीर था। हमने अपने हवाई जहाज 'ला विले डी कैलकटा' से विदा ली। मुझे यह देखकर अचरज हुआ और खुशी भी हुई कि जहाज का नाम बँगला मे भी एक तरफ लिखा था। मेरे खयाल से यह कलकत्ते के लिए, जिसका नाम उस जहाज पर था, एक बडी बधाई की बात है।

हैनोय

चीनी कौसल (राजकीय प्रतिनिधि) और बहुत से हिन्दुस्तानियो ने हमारा स्वागत किया। कौंसल ने बताया कि दोपहर बाद तीन बजे कुनमिग को जानेवाले जहाज में मेरे लिए एक सीट ले ली गयी है। हिन्दुस्तानी दोस्त चाहते थे कि एक या दो दिन मैं वहाँ ठहरूँ, लेकिन मैं अपने कार्यक्रम में कोई हेरफेर न कर सका।

एक सिंधी सौदागर मुझे अपनें घर ले गये। उनकी बहुत बडी दुकान थी, जिसमे खिडकियो पर खूबसूरत-सी फुर्तीली अनामी लडकियाँ

चीजे वेच रही थी। वहाँके हिन्दुस्तानियो की एक सभा हुई और मैंने भाषण दिया। मैंने देखा कि कुछ सिंधियों को छोड़कर वाकी सव तामिल थे, जिनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। कुछ सिंधियो और दो-तीन मुसलमानो को छोड़कर कोई भी हिन्दुस्तानी नही समझता था, और अंग्रेजी तो उनसे भी कम समझ सकते थे। तामिल के अलावा वे फ्रेंच खूब जानते थे। अपनी फ्रेंच पर भरोसा न करके मैंने हिन्दुस्तानी में भाषण दिया और वाद मे एक मुसलमान ने जो शायद वहाँकी मस-जिद के इमाम थे, उसका तामिल में तरजुमा किया।

हिन्दुस्तान में जितनी अंग्रेजी फैली है, उससे भी ज्यादा वहाँ फ्रेंच का राज्य है। भिखारी लड़के-लडकियाँ तक फ्रेंच भाषा में भीख माँगते है। पढे-लिखो की तादाद वहाँ ज्यादा मालूम पडी।

हैनोय में कोई दो सौ-ढाई-सौ हिन्दुस्तानी हैं। सव कारवार में लगे हैं और उनका काम अच्छी तरह से चल रहा है। वे सव यूरोपियन ढग के कपडे पहने हुए थे। वैंगकॉक और सेगौन की तरह धोतियाँ यहाँ नही थी।

मैं मोटर से शहर में होकर गुजरा। वह सेगौन से वड़ा है और वहाँकी चाल–ढाल भी फ्रासीसी है। दोनो में सेगौन मुझे ज्यादा लुभावना जान पडा।

तीसरे पहर सवा तीन वजे मैं हवाई जहाज से कुनमिंग को रवाना हुआ। हिन्दुस्तानियो और चीनियों की भीड ने मुझे हार्दिक विदाई दी। जिस जहाज से मैं सफर कर रहा था, वह यूरेशिया कम्पनी का था। यह चीनी-जर्मन कारपारेशन है। जहाज जर्मनी का वना हुआ था और उसका ड्राइवर भी जर्मन था। एयर फ्रास जहाज से वह वहुत छोटा था, उसमें दस मुसाफिरो के लिए जगह थी। जगह की कमी की वजह से हम वडे घिरे-से महसूस करते थे।

ज्योंही हम चीन के करीब पहुँचे मेरे अन्दर खुशी की एक लहर उठी। कुदरती नज्जारे भी बड़े खूबसूरत थे। पीछे पहाड थे और एक नदी उनमें से निकलकर चक्कर खाती हुई घाटी में बह रही थी। जंगल से लदी पहाडियाँ ऊपर छायी हुई थी। कही-कही हरे-हरे खेत और छोटे-छोटे गाँव थे। नदी करीब-करीब लाल दिखाई देती थी और पहाड़ियों के खुले हिस्से भी गहरे लाल थे। शायद इसी रग की वजह से हुँनोय की नदी 'लाल नदी' कहलाती है।

जब हम पहाड़ो के पास पहुँचे तो बहुत ऊँचाई पर उडने लगे और कोई चार हज़ार फीट पहाडों के ऊपर पहुँच गये। कुदरती दृश्यों को ऊपर से देखने में धरती से देखने की बनिस्बत बहुत फ़र्क पड़ जाता है। नीचे से देखने में जो बहुत खूबसूरत दिखाई देता है ऊपर से उतना नही दिखाई देता; लेकिन जो दृश्य मैंने देखा, वह बहुत खूबसूरत था और तरह-तरह के पहाडों की जुदा-जुदा शक्लों की वजह से नीरसता नहीं आने पाती थी। एक गहरी नीली झील, जिसके चारों तरफ हरे और लाल पत्थर थे, बडी खूबसूरत दिखाई देती थी। उसके बाद ही दूर एक और झील दिखाई दी; लेकिन तभी जहाज का नौकर आया और सब पर्दे गिराकर हमे आगाह कर गया कि हम पर्दे न उठाये। शायद मै सोचता हूँ ऐसा लडाई के लिए अहतियातन् किया गया होगा। इस तरह मुसाफिरों को 'पर्दानशीन' कर दिया गया। हाँ, जर्मन चालक सारा दृश्य देख सकता था।

कुनमिंग आ रहा था और हमें ऐसा लगा कि जहाज उतर रहा है। फौरन ही जहाज के धरती पर उतरने से हमे हल्का-सा धक्का लगा और हम चीन देश मे खड़े थे।

कुनमिंग (यूनानफू)

क्योमिन्ताग के एक प्रतिनिधि, मि० योग कोता, जोकि लेजिस्लेटिव

यत्रॉन के मेम्बर भी हैं, चुर्गकिंग से मेरा स्वागत करने के लिए ही आये थे। कुनमिंग के मेयर भी वहाँ थे। मुझसे कहा गया कि एक रात मुझे शहर में बितानी होगी और चुर्गकिंग दूसरे दिन जा सकूँगा। मैं एक होटल में ले जाया गया।

चीन मेरे लिए एक नया मुल्क था—कथा-कहानी और इतिहास और मौजूदा ज़माने के बहादुरी के कामोंवाला अद्भुत देश ! और मैं तो हर बात के लिए तैयार था। लेकिन जब मैं होटल मे पहुँचा तो मुझे कुछ अचरज हुआ। जितने होटल मैंने देखे थे, उन सबसे वह एकदम निराला था। उसका दरवाज़ा, खूबसूरत चौक और उसका बाहरी रूप बहुत आकर्षक था और खास चीनी ढंग का था। लेकिन होटल के बारे मे मेरी जो कल्पना थी उनसे वह ज़रा भी नहीं मिलता था। मैंने उसके मुताबिक ही अपने को बनाया और निश्चित किया कि चीनी ढंग ऐसा ही होता होगा। जो कमरा मुझे दिया गया था, वह कुछ छोटा था, लेकिन साफ और आरामदेह था। गरम और ठंडे पानी का इंतजाम भी उसमे था। होटल का यह भेद बाद में खुला, जब मुझे बताया गया कि वह पहले मदिर था पर बाद में उसे होटल बना लिया गया। मुसाफिरो के ठहरने के कमरे पादरियो या पुजारियो के लिए रहे होगे, ऐसा दिखाई देता था, हालाँकि इसमे शक नही कि बाद में उन्हे फिर से बनाया गया और उसमें सामान भी जुदा दिया गया था। फिर भी पुजारी उनमे अच्छी तरह से रहते होगे। मेरा ध्यान हिन्दुस्तान के झगड़ो की तरफ गया जो मदिरो और मसजिदो को लेकर बराबर चलते रहते है। लेकिन चीनियों ने मदिरो को होटल बनाने में कोई रोक-थाम नही की और मुझे बताया गया कि बहुत-से मदिर स्कूल बना लिये गये है।

होटल का मैनेजर फ्रांसीसी था। उसने हमको बढिया फ्रांसीसी खाना

खिलाया और पीने के लिए ईविअन पानी दिया। उसके पास अच्छी फ्रेंच शराबें भी थी। वैसे लडाई के दिनो में चीन में आसानी से रहा जा सकता है, लेकिन कुनमिंग नमूने का चीनी शहर नहीं था। वह सरहद के करीब है, इसलिए विदेशी लोग और विदेशी माल आते रहते है। होटल का सारा वायुमण्डल फ्रासीसी था। होटल के नौकर चीनी बच्चे तक फ्रेंच बोलते थे।

हिन्दी चीन में और यहाँ मुझे अपनी बहुत दिनों की दफ़नायी हुई फ्रेंच का ज़ग छुडाना पडा; क्योकि कुछ आदमियो से बातचीत करने का दूसरा कोई जरिया ही नही था। हिन्दुस्तानियों से फ्रेंच में बात करना मुझे अजीब मालूम होता है। फिर भी वह उतना अजीब नहीं है जितना हिन्दुस्तानियों का आपस में अंग्रेजी में बातचीत करना।

मोटर से शहर में चक्कर लगाने और पैदल घूमने के लिए मैं गया। पुराना शहर था, जिसकी तीन या चार लाख की आबादी थी। लेकिन लडाई की वजह से हाल ही में आबादी बढ गयी थी; क्योंकि चीन से बाहर जाने के रास्तो में से कुनमिंग भी एक है। मुझे पता चला कि कुनमिंग और यूनानफू जगहें एक ही है। आज शाम तक मैं सोचे बैठा था कि वे दो जुदा-जुदा शहर होगे! यूनानफू पुराना नाम है, और कुनमिंग नया है और बिना किसी फर्क के दोनों नाम इस्तैमाल किये जाते है।

एक चीनी दोस्त के साथ मै शहर मे घूमा और इस कोशिश में रहा कि चीन के वायुमण्डल का अन्दाज करूँ, और लड़ाई के निशानात पाऊँ। सिपाहियो की यहाँ-वहाँ बिखरी टुकडियो के अलावा लड़ाई के कोई निशान न थे। कुनमिंग पर गोलाबारी नही हुई थी। सडको में गोल पत्थर लगे थे और वहाँ रोशनी ज्यादा नही थी। दुकानो पर रोशनी

खूब थी और वे आकर्षक थी । खाने की चीजें और कपडे और दूसरी चीजे बहुतायत से थी । लेकिन फिर भी शान-शौकत की चीजो की कमी थी । सडको पर लोगो की भीड थी और रिक्शाएँ चल रही थी । अख़-बार बेचनेवाले लड़के अपने-अपने अखबारो के नाम और खबरे ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर बता रहे थे । निश्चय ही शहर का रूप बिगड रहा था और वहाँ तड़क-भडक नही दिखाई देती थी; लेकिन लोग खुश और बेफिक्र दिखाई देते थे । किताबों की बहुत-सी दुकानें थीं । फल बहुता-यत से दिखाई पडते थे । अनार मैंने बहुत ज्यादा देखे । सड़क पर बहुत से धुनिये अपनी धुनकी लिये मेरे पास से गुज़रे । शायद दिन का काम खत्म करके जा रहे थे । एक जगह पर धुनिये काम कर रहे थे और एक औरत बैठी थी । एक बड़े-से चर्खे से वह सूत को दोहरा कर रही थी । छोटे-छोटे मोटे-ताज़े बच्चे खुश होकर इधर-उधर खेल रहे थे और छोटे-छोटे लड़के और लडकियाँ हमारे पास होकर गुज़रे । फिक्र उन्हे नही थी और वे हँस रहे थे ।

आमतौर से फैले भद्देपन की वजह शायद यह थी कि सब कपड़ो के रंग एकसे थे । करीब-करीब सभी मर्द, औरते और बच्चे एक गहरे नीले या काले रग की कमीज़ या गाउन पहने थे । चीनी पोशाक मुझे अच्छी लगती है । अगर वह अच्छी तरह से तैयार की जाये तो वह बडी खूबसूरत और शानदार लगती है और काम करने के खयाल से भी वह अच्छी है । उस पोशाक में खासकर लडको और लड़कियों दोनों के लिए एक कमीज़ और पाजामा होते है । कमीज़ शरीर में चुस्त होती है जो लम्बी होती है या छोटी । बडी लड़कियाँ अक्सर एक लम्बी गाउन पहनती है जो नीचे पैर तक पहुँचती है; लेकिन एक तरफ को घुटने तक कटी होती है । यह लम्बी गाउन बडी खूबसूरत होती है;

लेकिन काम के खयाल से ज्यादा अच्छी नही होती।

चीनी कुली और मजदूर सभी धूप के कारण घास या बाँस के बने टोप लगाते हैं। हैनोय में मैंने देखा कि हरेक औरत और मर्द मज़-दूर टोप की तरह एक मुडी टोकरी इस्तैमाल करता है। धूप से बचने की यह सस्ती, अच्छी और हल्की टोपी है। कभी-कभी उसका किनारा इतना बडा होता है कि मेह मे भी छाते की तरह काम आता है। मेरे खयाल से हमारे हिन्दुस्तानी किसानों में भी इसी तरह धूप के टोप बनाने और पहनने का शौक पैदा करना चाहिए। इससे उनको बडी मदद मिलेगी। मुझे यकीन है कि बाँस या सरकडे के बने धूप के टोप उडीसा और मलाबार में पहने भी जाते हैं।

एक भोज मे मैं प्रो० तिन तुआन सेन, खानों के एक्सपर्ट मि० के० टी० ह्वाग और चीन के डाक-विभाग के डाइरेक्टर-जनरल, मि० सिन सुग से मिला। उनसे बहुत दिलचस्प बाते हुईं।

चुगकिंग का प्रोग्राम जो मेरे लिए रखा गया है, मुझे दिखा दिया गया है। वह वहुत बडा है, लेकिन है दिलचस्प। कल दोपहर में चुगकिग पहुँचूंगा और वहाँ शायद एक हफ्ते ठहरूँ। उम्मीद है कि रेडिओ पर भी बोलूँ।

मैं इस बात को नहीं भूल पाता कि कल सुबह मैं कलकत्ते में था। उसके बाद से बर्मा,स्याम और हिन्द-चीन से गुजरा हूँ और अब मैं चीन मे हूँ। इन जल्दी-जल्दी होनेवाली तब्दीलियों के मुआफिक होना बडा मुश्किल है। मौजूदा परिस्थितियो से हमारे दिमाग कितने पिछडे हुए है। हम बीते दिनों की बात सोचे जाते है और आज की जो नियामतें है उनका फायदा उठाने से इनकार कर देते है। तब दुनिया मे इतनी लडाई और मुसीबत है, तो अचरज क्या है?

४

२३ अगस्त, १९३९

कुर्नमिग की आवहवा वड़ी खुशगवार और ठडी थी और हैनोय की गर्मी से वह तव्दीली वडी अच्छी जान पड़ी। रात को खूव सर्दी थी। उसकी वजह शायद यह थी कि पास ही एक झील थी। यह मुझे सुवह मालूम हुआ। वह झील मेरे कमरे की खिड़की के ठीक पीछे तक आती थी। हमारे होटल का नाम 'ग्राण्ड होटल ड्यू लैक' था।

वडे तडके सहन मे से एक तीखी आवाज़ आती हुई मैंने सुनी। वह आवाज़ फ्रेंच व्यवस्थापिका की थी, जो सफाई और घुलाई की देखभाल करती हुई तेज़ी और गुस्से से फ्रेंच भाषा में चीनी लडकों को डाँट-फटकार रही थी। और आवाजें भी आ रही थी जैसे अखबार वेचनेवाले लडको की।

कलेवे के वाद हम झील पर घूमने गये। जवान सैनिकों की पार्टियाँ गाती हुई जा रही थी। इन सैनिको या नव-सैनिको मे से कुछ तो लड़के ही मालूम होते थे। पन्द्रह वरस से ज्यादा के नही। लेकिन विदेशी को चीनियो की उम्र का अन्दाज़ लगाना मुश्किल है।

दस वजे से वहुत पहले हम हवाई अड्डे पर पहुँच गये। वहाँपर कोलाहल-सा मचा हुआ था। प्रान्तीय सरकार के कोई मेम्वर भी उसी जहाज से सफर कर रहे थे और कर्मचारियो को विदाई देनेवालो की भीड़ इकट्ठी थी। यूरेशिया कारपोरेशन के जहाज में हम सवा दस वजे रवाना हुए। जहाज भरा हुआ था और उसमें जगह कम ही थी। सव पर्दे डाल दिये गये थे। कुछ मिनट के वाद हमें वाहर देखने की इजाज़त मिली। ज़ाहिरा तौर पर वह तो हवाई अड्डा ही था और उसमे जो कुछ था वह जनता के देखने के लिए नही था।

उडने के दरमियान ही बेतार से यह खबर हमे मिली कि केन्द्रीय कोमिन्ताग के प्रधान मत्री, डाक्टर चू चिआ ह्वा, दूसरी बहुत-सी सस्थाओ के प्रतिनिधियो के, जिनमे चुगकिग के मेयर भी शामिल है, नेता की हैसियत से हवाई अड्डे से आपका अभिनन्दन और स्वागत करते है।

चुंगकिग

चुगकिग पहुँचने मे हमे तीन घटे से कुछ ज्यादा लगे। रास्ते भर पहाड-ही-पहाड थे और जब हम चुगकिग के पास पहुँचे तो पहाडो और चट्टानी किनारो के बीच याग्त्सी नदी चक्कर लगाती हुई दिखाई दी। धरती की सतह जरा भी दिखाई नही देती थी। मुझे अचरज हुआ कि उस ऊँचे-नीचे मुल्क मे हवाई अड्डा किस तरह बनाया गया होगा। इसका जवाब बडा दिलचस्प था और मेरे लिए तो वह अनोखा। जहाज़ नदी के बीचो-बीच सूखी जमीन पर उतरा। बहुत-से बडे-बडे लोग वहाँ जमा हुए थे। फौज के कुछ बडे अफसर और डाक्टर चू जिन्होने बेतार की खबर भेजी थी, उनके प्रमुख थे। ज्योही मै जहाज से उतरा 'वन्दे-मातरम्' की परिचित और मधुर ध्वनि ने मेरा अभिनन्दन किया। अच-रज से जब मैने ऊपर देखा तो यूनिफार्म मे एक हिन्दुस्तानी को पाया। वह हमारे काग्रेस मैडिकल यूनिट के धीरेश मुखर्जी थे।

स्वागत में एक छोटा-सा भाषण हुआ और फूलो के गुलदस्ते भेट किये गये। उसके बाद हम यूनिफार्म मे खडी लडकियो और लडकों की कतार के पास होकर गुज़रे। उन्होने एक आवाज़ से झण्डे हिलाकर हमारा अभिवादन किया। बाद में नदी पार करने के लिए हम एक नाव पर जा बैठे।

नदी के दूसरे किनारे पर बहुत-सी सीढ़ियाँ हमारे सामने दिखाई

दी और मुझसे एक पालकी में (जिसे 'चो से' कहते थे, बैठने के लिए कहा गया। सोचा गया था कि उसमे मुझे ऊपर लेजाया जाये। इस तरह ऊपर ले जाये जाने के विचार पर मुझे हँसी आयी और फुर्ती के साथ मैंने सीढ़ियो पर चढ़ना शुरू कर दिया; लेकिन फौरन ही मुझे मालूम हुआ कि ऊपर चढना आसान काम नही है। कोई ३१५ बड़ी सीढियाँ थी। मै हाँपने लगा और थक भी चला। औरों पर मैंने अपनी ताकत का रौब गालिब तो किया; लेकिन मैंने महसूस किया कि ऐसे हिम्मत के खेल कर सकूँ इतना जवान अब मै नही रहा हूँ। वहाँसे हमने विदेशी ऑफिस के महमान-घर के लिए, जहाँ मेरे ठहरने का इन्तजाम किया गया था, कार ली। वहाँ फिर हमे कोई सौ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ीं। चुगकिंग पहाड़ो पर फैला हुआ बसा है। कुछ पहाड़ो के बीच मे है, कुछ ऊपर चोटी पर और हमवार रास्ता तो बहुत ही थोडा है।

बहुत-से बडे अफसर और दूसरे लोग मुझसे मिलने आये और मैंने चुगकिंग का एक हफ्ते का कार्यक्रम जो मेरे लिए बनाया गया था, देखा। सबसे पहले उसी शाम को चार बजे एक मीटिंग थी, जिसमें १९३ सस्थाएँ मेरा स्वागत करनें को थी। इस मीटिंग में हम गये। एक बुजुर्ग राजनेता श्री वू चि-हुई ने अभिनन्दन करते हुए कुछ शब्द कहे, जिनका मैंने जवाब दिया। उसके बाद सन यात-सेन की तस्वीर के सामने राष्ट्रीय नारे लगाये गये और वन्दना की गयी। बाजे चीनी राष्ट्र-गीत बजा रहे थे। सारा दृश्य बड़ा प्रभावशाली था।

इसी मीटिंग के दरमियान मुझे मालूम हुआ कि जहाँ कही प्रधान सेनापति का नाम आता है, वही उनकी इज्जत के लिए सारे लोगो को उठकर खडा होना पडता है। इस बार-बार खडे होने से मीटिंग में बाधा पडती है। इसलिए उसे रोकने के लिए मुनासिब यह है कि

उनको नेता या और किसी नाम से पुकार लिया जाया करे, नाम उनका न लिया जाये।

मीटिंग के बाद फौरन ही मुझे भोज में पहुँच जाना था, जिसका इन्तजाम बहुत-सी सस्थाओं की तरफ से किया गया था। लेकिन तभी गुप्त रूप से खबर मिली कि गोलाबारी की उम्मीद की जा रही है। इसलिए खाने का मामला ही खत्म हो गया। जल्दी से हम अपने घर की तरफ लौटे। हमने देखा कि सडक पहले ही से आदमियो से भरी हुई है और सब एक तरफ को जा रहे हैं। सरकार की तरफ से खतरे का सिगनल अभी नही दिया गया था; लेकिन खबर दे दी गयी थी और मर्द-औरतें अपने बचाव के लिए सुरगो की तरफ तेजी से जा रहे थे। चुगकिग को एक सहूलियत है। दुश्मनो के जहाजो के आने की खबर जल्दी ही एक घण्टे से भी पहले मिल जाती है।

उसके बाद फौरन ही खतरे का भौपू बोला और मुझसे कहा गया कि मै किसी सुरग मे चला जाऊँ। यह बात मैने बहुत नापसद की, लेकिन अपने मेजबानों से इनकार भी तो नही कर सकता था। हम लोग मोटर मे बैठकर एक खास सुरग में गये जो विदेशमत्री के घर से मिली हुई थी। सडको पर बडा जोशीला दृश्य दिखाई दे रहा था। लोग भागकर या तेजी से चलकर सब-के-सब बमबारी से बचानेवाली जुदा-जुदा सुरगों की ओर जा रहे थे। कुछेक के साथ छोटे-मोटे बण्डल या बक्स थे। माँएँ अपने बच्चो को छाती से लगाये हुए थी और छोटे-छोटे कुनबे साथ-साथ जा रहे थे। लॉरियाँ आदमी भर-भरकर ले जा रही थी। किसी तरह की घबराहट वहाँ दिखाई नही देती थी। वह तो लोगों का रोजमर्रा का काम था और वे उसके आदी हो गये थे।

हम विदेश-मत्री की सुरग मे पहुंचे। देखा कि उनके दोस्त जमा होते

जा रहे थे। ज्योही दूसरी मर्तबा खतरे का सिगनल दिया गया तो हम १५×१० की एक छोटी मगर ठंडी जगह के भीतर चले गये। उसमे लोहे के दरवाजे लगे हुए थे। हमे बताया कि हमारे ऊपर पच्चीस फीट मज़-बूत पथरी थी। यहाँ पर हम बैठ गये या खडे रहे; क्योकि भीड़ बढ़ती गयी और कोई पचास आदमी अन्दर आ गये थे। रोशनी बुझा दी गयी। कभी-कभी बिजली की टार्च इस्तैमाल की जाती थी।

वहाँपर बहुत-से दिलचस्प आदमी थे। सरकारी अफसर, उनकी बीवियाँ, सेनापति, प्रोफेसर और अखबारनवीस सभी थे। मगर मेरा मन कही और न होता तो वक्त बडी अच्छी तरह से कट जाता। वैसे भी वहाँ गर्मी थी और जगह तग थी। चुगकिग मे तो जितनी गर्मी मै सम-झता था, उससे भी कही ज्यादा निकली। सुरग के अन्दर तो थोड़ी ठडक थी, लेकिन उससे कहीं ज्यादा वहाँ दम घुटा जाता था। जब खास सुरगो का यह हाल था तो मुझे अचरज था कि उन आम सुरगो का क्या हाल होगा जिनमे हजारो लोगो की भीड़-की-भीड भरी होगी ?

बाहर से आनेवाली आवाज़ को मै गौर से सुनता रहा। उससे मै कुछ समझ न सका। लेकिन उनके आदी कानो ने पहचान लिया कि बम गिरने की आवाज़ है, यह पीछा करनेवाले चीनी जहाज़ो की भन-भनाहट है और यह दुश्मनो के बम बरसानेवाले जहाज़ो का शब्द है।

तो हम वहाँ इतज़ार में बैठे रहे। कभी-कभी बाहर झाँक लेते थे। चाँदनी फैली हुई थी। कितनी शात ! कितनी शीतल ! ! और अष्टमी का चाँद चैन से चमक रहा था। हत्याकाण्ड और ज़ोर की बरबादी हो रही थी। कुछ कारणो से बमबारी को रोकनेवाली तोपें नही चलायी जा रही थी और सर्चलाइटो में भी रोशनी नहीं थी। उस सुरग के हमारे पडोसी सोचते थे कि विरोधी जहाज़ो में घमासान लड़ाई चल रही है।

वक़्त काटने के लिए हमने अन्तर्राष्ट्रीय हालत की हाल की पेचीदगी रूस और जर्मनी की प्रस्तावित अनाक्रमण सधि व इग्लैण्ड, फ्रास और जापान पर उसका असर इन सबपर चर्चा की। इस सधि से बहुत से चीनी खुश थे, क्योंकि इसे वह जापान के अकेला रह जाने की निशानी समझते थे।

उस सुरग के अँधेरे मे हम दो घटे तक बैठे रहे। सब एक दम खामोश और एकचित बैठे थे और मुझे बताया गया कि हवाई हमला अमूमन तीन-चार घटे तक चलता है। तब्दीली के खयाल से यह तजुर्बा मुझे बुरा नहीं लगा, लेकिन अपने मन में मैं यह साफ तौर से जानता था कि एक वक्त मे घटो यों ही बन्द पड़े रहने की बनिस्बत मैं चन्द्रमा की ताजी और ठडी रोशनी मे जाने का खतरा उठाना ज्यादा पसन्द करूंगा। मुझे यह ज्यादा पसन्द होगा कि आदमी से चूहा बनकर बिल में बैठ जाने की बनिस्बत लडाई के मोर्चे पर जाऊँ या ऊपर आसमान में किसी पीछा करनेवाले जहाज मे चक्कर लगाऊँ।

दो घटे बीते और तब खबर मिली कि जापानी जहाज़ लौटे जा रहे हैं। सत्ताईस जहाज़ आये थे जिनमे से अठारह पहले ही हैंको की तरफ जाते देखे गये थे। बाकी नौ भी चले गये। रोशनी हुई और फौरन ही वहाँ पर शोर-गुल और जोश दिखाई देने लगा। वे सब लोग जो इतनी आत्मीयता से दो घटे तक पास-पास बैठे थे, बिना किसी तकल्लुफ या दुआ-सलाम के जुदा हो गये और अपने-अपने घरो की तरफ तेज़ी से चले गये।

ज्यो-ज्यो आदमी अपनी छिपने की जगहों से बाहर आने लगे, सड़के फिर भरने लगी। जिस चाल से लोग गये थे, उससे कही धीमे लौट रहे थे। लौटते मे हमे लोगो के बहुत-से गिरोह मिले। वे कुदाली

और वेलचा लिये उन जगहो की तरफ जा रहे थे जहाँपर कि वमवारी की वजह से नुकसान पहुँचा था। वे उसे ठीक करने जा रहे थे, दूसरे लोग अपने-अपने काम पर। चुगकिंग मे फिर मामूली तौर से कारोवार चलता दिखाई देने लगा। कुछ लोग शायद ऐसे थे जिनका काम खत्म हो गया था और अपने मुर्दा और झुलसे शरीर से और आधुनिक सभ्यता की प्रगति और महानता का प्रदर्शन कर रहे थे।

हमे अवतक ठीक मालूम नही कि उस हमले मे क्या हुआ ? ज़ाहिरा तौर पर खास शहर तो वच गया, लेकिन उसके सरहदो पर, खासकर एक गाँव पर जो छोटा-सा औद्योगिक केन्द्र था, वम-वर्षा हुई।

५

२४ अगस्त, १९३९

पिछली रात का हवाई हमला, जहाँतक जापानियो का ताल्लुक था, यो ही गया। मालूम होता है कि चीन के पीछा करनेवाले जहाज़ो ने उन्हे, शहर से वाहर ही रोक दिया था और थोड़ी मामूली-सी लड़ाई हुई। सर्च-लाइट से कुछ जापानी जहाज़ पहचान लिये गये। इसलिए जापानी जहाज़ शहर के वाहर खेतो पर ही जल्दी-जल्दी वम डालकर चले गये। एक झोपडी वरवाद हो गयी और दो आदमियो के मामूली चोट आयी। कहा जाता है कि पीछा करनेवाले जहाज़ो मे से चलायी गयी मशीनगनो के गोले कई एक जापानी जहाज़ो मे आकर लगे। जापानी जहाज़ो का कितना नुकसान हुआ, इसका तो पता नही। लेकिन ऐसा खयाल किया जाता है, या उम्मीद की जाती है, कि उन जहाज़ों मे से कुछ को लौटने में मजबूरन् जगह-जगह उतरना पडा होगा।

अगले कुछ दिनो मे जवतक चाँदनी रात रहेगी, शायद कुछ हवाई

हमले और हो । भविष्य मे चाँदनी रात का ताल्लुक और-और चीजो के साथ हवाई हमलो से भी समझा जाना चाहिए ।

आज सुबह मुझे पता चला कि प्रधान सभापति ने पिछली रात के हमले मे मेरी हिफाजत के बारे मे अपनी चिंता प्रगट की थी । उन्होने खबर दी कि मुझे उनकी खास सुरग मे भेज दिया जाये, लेकिन इस खबर के आने से पहले ही मै तो विदेशी मत्री के यहाँ चला गया था ।

वहुत से लोगो—मन्त्रियो और सेनापतियो—ने मुझे सुजनतापूर्ण निमन्त्रण दिया है कि जब-कभी मौका आये, मै उनकी सुरग इस्तैमाल करूँ । मेरा अन्दाज है कि बमबारी के इस जमाने मे यह शिष्टाचार और मित्र-भाव की हद है ।

सुबह का वक्त मैने मिलने-मिलाने मे बिताया । पहले मै कोमिताग के प्रधान कार्यालय मे गया, जहाँपर मुझे प्रधान-मत्री डा० चूचिआ ह्वा मिले । कोमिताग का विधान और सगठन मुझे समझाने लगे । यह विधान तो बडा पेचीदा है और वह कैसे बना और किस तरह उसका सचालन होता है इस बारे मे मुझे बहुत ही धुँधला खयाल रहा । फिर भी मै इतना तो समझ गया कि कोमिताग कोई ज्यादा जनतत्रीय सस्था नही है, चाहे वह कहलाती जनतत्रीय ही है । उस दिन, बाद मे मैने कुछ मत्रियो से शासन की रूपरेखा को समझने की कोशिश की । वह तो और भी पेचीदा है और कोमिताग और सरकार के बीच का सम्बन्ध बडा अजीब है । शायद आपसी बाते उनके मजबूत सबध को कायम किये हुए है । मैने कुछ ऐसी किताबे और कागजात माँगे है, जिनसे सरकार और कोमिताग का ढाँचा समझ सकूँ ।

उसके बाद मै विदेश-मत्री डा० वैग से मिलने गया, जिनका बे-बुलाया मै पिछली रात सुरग के भीतर रहा था । बहुत देर तक हम

दिलचस्प बाते करते रहे।

मेरी तीसरी मुलाकात डा० हॉलिटन के ताग के साथ हुई जिनके सुपुर्द प्रकागन का काम है। उनका और उनके काम का मुझपर अच्छा असर पडा।

नदी-किनारे के एक रेस्ट्राँ (भोजनालय) मे नाश्ते का इन्तजाम बडे पैमाने पर किया गया था और वह तकल्लुफाना भी था। वह शहर के कारपोरेशन, कोमिताग और नगर-रक्षक-सेना के कमान्डर की तरफ से दिया गया था। ऐसे तकल्लुफाना जल्से—भले ही मेजवान लोग उनमे काफी घरेलूपन ला देते हो—बडे परेगान करते है। नुमायशी तकरीरे हुई जिनका जवाब मैने गिने-चुने वेजान शब्दो मे दिया और फिर उनका तरजुमा हुआ है। मेरे वहाँ पहुँचने और वहाँसे चलने पर फौजी बाजे वजने लगते है और सलामी का तो कोई ठिकाना ही नही। मुझे डर है कि मेरी वेतकल्लुफ आदते इस सवसे मेल नही खा पाती।

लेकिन सवसे वडी आफत तो खाना है, जो चलता ही रहता है, अखीर जिसका दीखता ही नही। और ठीक उसी वक्त जब मै सोचता हूँ कि चलो खत्म हुआ, तभी मेज पर आधी दर्जन रकाबियाँ और आ धमकती है। चीनी खाना या उसकी कुछ चीजे मुझे पसन्द है। उनमे कला होती है। लेकिन खाना मेरी समझ मे नही आता। मालूम होता है कि मजेदार रकाबियों की वहुत-सी किस्मे है, जो एक के वाद एक चली आती है। खानेवाले थोडा-थोडा करके उन्हे खाते है। और तरह-तरह के उम्दा स्वादो का आनन्द लेते जाते है। खाने का तरीका मै पसन्द नही करता। मेरा मतलव चॉप स्टिको से नही है जिन्हे होगियारी और लियाकत के साथ इस्तैमाल करना होता है। काग कि मै उनको इस्तेमाल करने में ज्यादा माहिर होता! सारी रकाबियाँ वीच

मे रख दी जाती है और हरेक मेहमान बीच मे रखी हुई रसभरी रकाबियो मे से ही लजीज़ चीज़े उठाता जाता है और लाज़िमी तौर से रसभरे कुछ टुकडे मेज़पोश पर गिरते जाते है।

तीसरे पहर मेरी एक बडी मज़ेदार मुलाकात मशहूर एट्थ रूट आर्मी (Eighth Route Army) के जनरल ये चियन-यिंग के साथ हुई। आना वोग उनके साथ थी, जो मेरी बोली का तरजुमा करती जाती थी। आना वोग जर्मन (आर्य) है। पर शादी उनकी चीन मे हुई है और तन-मन से वह चीन-निवासिनी है। जापानी बमो से वह बाल-बाल बच चुकी है।

जनरल ये ने एट्थ रूट आर्मी के बारे मे बाते की और बताया कि अपनी फौजी कार्रवाइयो के अलावा और क्या-क्या काम वह कर रही है। अपने दृष्टिकोण से उन्होने चीन की मौजूदा हालत भी समझायी।

उसके बाद मे प्रधान मत्री या ठीक-ठीक कहे तो एक्ज़ीक्यूटिव युअन के अध्यक्ष डा० कुग से मिलने गया। वहाँसे हम एक बड़ी चायपार्टी मे गये, जो मेरा स्वागत करने के लिए खास-खास आदमियो की तरफ से दी जा रही थी। पार्टी बडी मज़ेदार रही और बहुत-से मत्रियो, उप-मत्रियो, भूतपूर्व मत्रियो और सेनापतियो तक से मेरा मिलना हुआ। चीनी जलसेना-नायक ने तो मुझे हैरत में डाल दिया। मैंने चीनी जहाज़ी बेडे के बारे में पूछा तो उन्होने कहा कि फिलहाल तो जहाज़ी बेडे में सिर्फ थोडी-सी तोपवाली नावे है। लेकिन कुछ भी हो जहाज़ी बेडे का बाजा तो था ही, जो उस पार्टी मे अच्छी तरह से बजाया जा रहा था।

इस पार्टी मे मै जिन लोगो से मिला उनमे सिंकिआग से आये हुए एक प्रतिनिधि भी थे। वह मेरे सम्बन्ध मे फारसी मे बोले। मुझे बडा अचरज हुआ। मेरे स्वागत मे उन्होने जो कुछ कहा, उसके बस एक-दो

शब्द मै समझ सका और उस राजसी भाषा मे बातचीत जारी रखने की अपनी नाकाबिलीयत पर मुझे अफसोस हुआ ।

बहुत-से विदेशी पत्रकार खास तौर से अमरीकन और रूसी पत्रकार, वहाँ मौजूद थे ।

चीनियो के नाम तो एक आफत है, खासकर तब जब कि खासी तादाद से मेरा साबका पडता है । बहुत से नाम तो करीब-करीब एक से ही सुनाई दिये । मेरा अन्दाज़ है कि इसी कठिनाई की वजह से चीनी लोगों की विज़िटिंग कार्डों से मुहब्बत बढी । ज्योही आप किसी चीनी से मिलेगे, फौरन ही वह अपना कार्ड निकालकर पेश कर देगा । मेरे पास बीसियों ऐसे कार्ड अभी से ही जमा होगये है । हिन्दुस्तान मे कार्डो का आदी न होने की वजह से मेरे पास अपने कार्ड ज्यादा नही है, पुराने ज़रूर मेरे पास पडे है । लेकिन वे कबतक चलेगे ?

बहुत-से मत्रियो और दूसरे लोगो के साथ जिनमें, जनरल चैन चैग भी शामिल थे, भोज हुआ । हम दोनो की एक ज़बान न होते हुए भी जनरल चैन चैग को मै बहुत पसन्द करता हूँ । वह बेतकल्लुफाना भोज था और हमारी बातचीते बडी मज़ेदार हुई । चीनी मुझे बहुत अद्भुत और बढे-चढे लोग जान पड़े । उनसे बात करने मे मज़ा आता है, बशर्ते कि ज़बान की मुश्किल बीच में न आ जाये ।

रात को कोई हवाई हमला नही हुआ ।

: १ :

स्पेन के प्रजातन्त्र को श्रद्धांजलि

आज जबकि दुनिया मे काली करतूते की जा रही है, सस्कृति तथा सभ्यता नष्ट होती जा रही है और हर जगह हिंसा का बेरोक-टोक बोल-बाला है, तब स्पेन और चीन के प्रजातन्त्र राष्ट्रो ने अपने ऊपर आये हुए विकट सकटो का भी बड़े शान के साथ मुकाबला करके उन लोगो के रास्ते मे रोशनी करदी है, जो अँधेरी रात मे इधर-उधर भटक रहे थे पर कोई रास्ता नही दीख पडता था। जो हैरतगेज़ भयानक काण्ड हुए है, उनपर हमें दुख है, लेकिन उस मनुष्यतापूर्ण दिलेरी और साहस पर हम फख्र और उसकी तारीफ करते है, जो आफतों मे भी मुसकराती रही है और अधिक ताकतवर होगयी है और इन्सान की उस अजेय आत्मा के प्रति भी हम आदर प्रकट करते है जो किसी भी बडी से-बड़ी ताकत के आगे सिर नही झुकाती, चाहे नतीजा कुछ भी क्यो न हो।

स्पेनवासियो के नसीब को हम बडी चिन्ता के साथ देख रहे है, लेकिन हम यह जानते है कि वे पददलित कभी नही किये जा सकते, कारण कि स्वय वह उद्देश्य ही अमिट है, जिसके पीछे इतना अजेय साहस और बलिदान हो रहा है। मैड्रिड, वेलेशिया और बार्सीलोना हमेशा जिन्दा रहेगे और उनकी राख से उठ-उठकर स्पेन के प्रजातन्त्रवादी अपने स्वतन्त्र स्पेन का निर्माण करके अपने अरमान पूरे करेगे।

हम लोग जो अपनी आज़ादी के लिए कशमकश कर रहे है, स्पेनीय प्रजातन्त्र के इस ऐतिहासिक युद्ध से बहुत प्रभावित हुए है क्योकि वहाँ पर ससारभर की आज़ादी खतरे मे है। हमारी लड़ाई के सरहद्दी मोर्चे

सिर्फ हमारे देश ही मे नही बल्कि चीन और स्पेन में भी है ।

इसी बीच लाखों शरणार्थी लोग प्रजातन्त्र-स्पेन मे भूखो मर रहे हैं और औरते और बच्चे ऊपर से दुश्मन की बमबारी ही नही सहते बल्कि खाने के बगैर मौत से भी लडते है । इस भयकर विपत्ति की हिन्दुस्तान उपेक्षा नही कर सकता और हमें चाहिए कि हम उनके लिए भोजन और सहायता पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करे ।

मै उन लोगो को, जिन्होने यह आयोजन किया है और स्पेनवासियो के जीवन-मरण के सकट के समय उनकी मदद पहुँचाने के लिए जो लोग इसमें हिस्सा बँटा रहे है उन्हे, मुबारकबाद देता हूँ । आजादी के उन दीवानो के लिए हम कर तो कुछ भी नही सकते, पर कम-से-कम उनके गौरवपूर्ण साहस और जिस उद्देश्य के लिए उन्होने असीम बलिदान किया है, उसके प्रति यह श्रद्धाजलि तो भेट कर ही सकते हैं ।

स्पेन-प्रजातन्त्र की जय हो !

२४ जनवरी, १९३९

: २ :

स्पेन में

पिछले साल स्पेन मे लडाई चल-रही थी और मै वहाँ गया था, पर मैंने ये लेख अब लिखे है और कोशिश की है कि जो कुछ असर मुझपर पड़ा, उसे लिख डालूँ। बदकिस्मती से मैने अपनी आदत के मुताबिक घटनाओ की कोई डायरी नही रखी, न कोई नोट ही लिये थे और वक़्त गुज़र जाने से वे असर गायब होगये और याददाश्त तो बडी अजीब-अजीब चाले खेलती है। फिर भी चूँकि वे काफी साफ थे, इसलिए मेरे दिमाग मे बहुत कुछ रहा और रहेगा, भले ही नये-नये खतरे और नयी-नयी आफते क्यो न आती जायें। जैसा मैंने चाहा था मै इन्हे पूरा नही लिख सका, इसलिए इन लेखो को अपूर्ण वर्णन ही मानना चाहिए।

१

एक साल पहले और ठीक-ठीक कहूँ तो एक साल और एक हफ्ता पहले १४ जून १९३८ को हम जिनोवा मे उतरे थे। हमारा निश्चय स्पेन—प्रजातन्त्र स्पेन जाने का था, इसलिए हम फौरन मार्सेलीज़ जाने के लिए हवाई जहाज़ पर सवार होगये। हमारा हवाई जहाज़ रिवीयरा के चक्करदार और समुद्रतट के ऊपर होकर उडता चला। वहाँ पासपोर्ट लेना-लिवाना, पुलिस के कायदे-कानून मानना वगैरा दस्तूर अदा किये गये। बिना आराम किये और खाना खाये हम वहाँ के कई दफ्तरो मे गये और एक से दूसरे में भटकते रहे। स्पेन के लिए हमारे

पास एक खास पास था और स्पेन सरकार का वह निमन्त्रणपत्र भी था, जिसमें हमसे वहाँ आने की और उनके प्रतिनिधियो को हमारे लिए तमाम सुविधा करने और सहायता देने की सूचना दी गयी थी।

इस बल पर हमने सोचा कि अब हमारे रास्ते में कोई अडचन नही आयेगी। लेकिन वह हमारी भूल थी। घटो हम मार्सेलीज के एक कोने से दूसरे कोने मे,एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर मे और वहाँसे भी अगले दफ्तर मे भेजे जाने के लिए फिर तीसरे दफ्तर मे और फिर चौथे दफ्तर में—भागे-भागे फिरे। हमे पता चला कि कुछ और फ़ोटो जरूरी है। इसलिए हमने एक फोटोग्राफर खोज निकाला, जिसने अपनी ओटो-मेटिक मशीन से मिनटो मे फोटो तैयार करके दे दिये।

एक कार्यालय का काम सँभालनेवाली महिला ने बताया कि स्पेन के लिए मेरे पास जो पास है वह ठीक नही है। वह लिखा हुआ था अंग्रेज़ी मे और एक फ्रेंच कार्यालय को अंग्रेज़ी भाषा पर ध्यान देने की भला क्या जरूरत पडी थी ? मैने कहा कि मै उसके कुछ शब्दो का अनुवाद कर दूँ, लेकिन वह तो अपनी बात पर अडी थी। इसलिए हम ब्रिटिश कौसलेट मे गये और वहाँसे दूसरा पास प्राप्त किया। अबकी बार वह फ्रेंच मे था। लौटकर उसी हठीली महिला के पास आये। लेकिन उसने कहा कि फीस तो आपने दी ही नही है। हम फीस देने को तैयार हुए, तो वह हमारी नादानी पर घृणा के भाव से मुस्करायी। फीस तो पुलिस दफ्तर मे जमा होनी चाहिए थी कि जो वहाँसे कुछ मील की दूरी पर था और उसकी रसीद पासपोर्ट के कार्यालय मे लायी जानी चाहिए थी।

अधिकारी की आज्ञा का हमे पालन करना पडा। पुलिस-दफ्तर हम गये, फीस जमा की और रसीद लेकर विजय की खुशी के साथ लौटे।

महिला ने देखकर कहा—यह क्या ? जरूरी फीस मे से आपने तो आधी ही जमा की है। यह काफी नही है। साफ था कि या तो हमने उस महिला की वात गलत समझी, या हममें से किसीने भूल की थी। अव तो इसके सिवा और उपाय ही न था कि थके-माँदे पुलिस-दफ्तर फिर वापस जाते। जल्दी-जल्दी हमें जाना पडा क्योंकि कार्यालय के वन्द होने का समय आ गया था।

आखिरकार पूरी-पूरी फीस जमा करके ठीक रसीद ली गयी और कार्यालय की वह महिला हमारी परेशानी पर रहम खाकर हमपर मुस्करायी और अधिकार-पत्र हमे दे दिया। अपने कार्यालय को उसने हमारी वजह से खोले रखा था, हालाँकि शाम हो गयी थी और दूसरे दफ्तर वन्द हो चुके थे।

अव स्पेनिश कौसलेट का सवाल रहा, क्योंकि उसकी भी इजाजत पाना ज़रूरी था। हम वहाँ गये। डर था कि कही वह वन्द न हो गया हो। वन्द तो वह हो ही गया था, लेकिन हमारे पास जो कागज़ थे, उन्होने गजव कर दिखाया। वन्द दरवाज़े खोले गये और हमारा वड़ा हार्दिक स्वागत किया गया।

आख़िरकार हमारी मनचाही चीज़ हमें मिली। रात होती जा रही थी और हम भी थके हुए थे। भूख हमे लग रही थी और आँखो मे नीद घुल रही थी। खाने मे स्पेनिश कौसल ने हमारा साथ दिया; लेकिन हम उसका साथ क्या दे सकते थे ? हम तो वस विस्तर और नीद की ही वात सोच रहे थे।

इस तरह हमारा यूरोप का पहला दिन वीता ! अगले दिन तड़के साढे चार वजे हम वार्सीलोना का जहाज़ पकड़ने के लिए हवाई अड्डे की तरफ भागे। हमारे नीचे गहरा नीला भूमध्यसागर था और स्पेन के

समुद्री किनारे की रेखा दूर पर फैली हुई थी । शीघ्र ही हम स्पेनिश भूमि पर उडने लगे और लडाई और बरबादी के चिह्न खोजने लगे। लेकिन उतनी ऊँचाई से हमे कोई निशान दिखाई नही दिया । देश मे शान्ति फैली हुई दीखती थी ।

अपने मजिलेमकसूद, बार्सीलोना के हवाई स्टेशन पर हम पहुँचे जो शहर से कुछ मील दूर था । कुछ गलती होगयी दीखती थी । वहाँ हमसे मिलने के लिए कोई नही था और कुछ समय तक हम समझ न पाये कि हमे क्या करना चाहिए ? कुछ देर बाट जोहने के बाद हम मोटर-बस से शहर गये । हरे-भरे लहलहाते खेतो के बीच से हम गुजरे और कही-कही सडक के किनारे हमें घरों के खण्डहर भी मिले । जाहिर था कि उनपर हवाई जहाजो ने बम बरसाये होंगे । लेकिन दृश्य शात था और मर्द और औरते खेतों में काम कर रही थी । दूर पर वार्सी-लोना दिखाई दिया । वह समुद्र-तट के सहारे-सहारे फैला हुआ था और ठीक भीतर तक चला गया था । उस भूप्रदेश मे जहाँ-तहाँ खडी हुई छोटी-छोटी पहाडियाँ उससे मिली हुई थी । धूप लेता हुआ बार्सीलोना बडा गौरवशाली दिखाई दिया । मालूम होता था वर्षो के तजुर्बोवाला और ज़ईफ वह है और लम्बा इतिहास उसके पीछे है; लेकिन फिर भी जैसे ताकत और जान उसमे है और जो कोई परदेसी उसे देखे उसका अपनी मधुर मुसकराहट से वह अपने सकट और दुख के वक्त भी हार्दिक स्वागत करता है ।

वार्सीलोना की चौडी और सायादार सडको पर हम पहुँचे । सडके लोगो से भरी थी । लोग हँस रहे थे, खुश थे और अपने काम या कारो-बार पर तेजी से जा रहे थे । मुसाफिरो से खचाखच भरी ट्रामे इधर-से-उधर दौड रही थी । दुकाने खुली हुई थी । थियेटरो, सिनेमा और

नाचघरो मे चहल-पहल दिखाई दे रही थी। अचभित होकर हमने इस बड़े शहर की जिन्दगी के इस चलते-फिरते नज्जारे को देखा। क्या यह उस युद्धकालीन सरकार की राजधानी थी जो विदेशी हमले और घरेलू झगडों के खिलाफ जीवन की साँसे ले रही है ? उसकी लड़ाई का मोर्चा कुछ ही मील की दूरी पर है और ज़िन्दगी मौत के किनारे ही चक्कर लगा रही है ? क्या यह वही शहर है जिसपर रोज़ हवाई जहाजो से बम् बरसते है ? और जो लगातार आसमान से मौत का सामना करता आरहा है ?

लड़ाई के निशान काफी साफ दिखाई देते थे। बड़ी-बड़ी इमारत खडहर हुई पड़ी थी और उनके जले हुए हिस्से दिखाई देते थ। सड़के और पक्के फर्श बम गिरने से टूट गये थे और उनमे गहरे गड्ढे पड़ गये थे। दुकाने खुली तो थी; लेकिन उनपर सामान बहुत कम था और शान-शौकत की चीज़े नज़र नही आती थी। आदमियो और औरतो के कपडे पुराने थे और ज्यादातर फटे थे। हर जगह सिपाही वर्दी में दिखाई देते थे। हालाँकि स्पेनवासियो का जैसा स्वभाव है, वे लोग हँसते थे, मगर चेहरो से उनके गम्भीरता और दुख टपकता था। वहाँके वातावरण मे शोक था। स्पेन की औरते अपनी ओढनी मे शानदार और आकर्षक लगती थी जैसी कि वे हमेशा लगा करती है। मुँह पर मुस्कराहट थी, पर उनकी काली आँखो से चिन्ता टपकती थी। विना टोप के वे जाती थी, क्योकि टोप अनावश्यक विलासिता की चीज़ थी और अपनी नयी आज़ादी के चिह्नस्वरूप उन्होने टोप लगाना छोड़ दिया था। लेकिन चाहे वे खुश थे या दुखी, उनकी निगाह मे, चाल-ढाल मे और निश्चय मे अभिमान था।

हम अपने होटल—मैजेस्टिक में पहुँचे और फौरन ही विदेशी ऑफिस

को फोन किया। थोडी देर वाद प्रचार और प्रकाशन मन्त्रिमण्डल की एक जवान महिला वहुत-कुछ माफी माँगती हुई हमसे मिलने आयी। वह वडी होशियार और सुन्दर थी। उसने हमारा सारा जिम्मा लिया और हमारे ठहरने और कार्यक्रम की सारी व्यवस्था की। वार्सीलोना के हमारे थोडे वक्त के ठहरने मे वह हमारी मार्गप्रदर्शिका रही, दोस्त रही और हमारे वहाँ आने से सम्वन्ध रखनेवाली हरेक वात पर वह ध्यान देती रही।

इस खूबसूरत शहर में हमने पाँच दिन विताये और पाँचो रात हवाई जहाजो से वमवारी हुई। इन पाँच दिनो मे नयी-नयी घटनाएँ घटी और तरह-तरह के अनुभव हुए। जिनकी याद हमेशा वनी रहेगी।
२१ जून, १९३९

२

क्या सिर्फ एक ही साल पहले मै स्पेन मे था ? तवसे जमाना वीत गया है। धक्के लगे है, मुसीवते आयी है। आते-जाते सूरज और चाँद को देख-देखकर दिन गिन-गिनकर तो हमारी जिन्दगी के साथ वढ़ती जाती हुई अपनी भावनाओ और अनुभवो का सच्चा अन्दाज़ लगाया नही जा सकता। स्पेन मे जिन वहादुर, शानदार ज़िन्दगी से भरे-पूरे, राष्ट्र की आशा के प्रतीक मर्द और औरतो से मै मिला, उनकी शक्ले आज ख़याली शक्ले है। वहुत से मर गये और वहुत से पनाहगीर की तरह इधर-उधर मारे-मारे फिरते है। लेकिन मन उनकी याद से भरा है और अपने चन्द दिनो स्पेन मे ठहरने मे जो ख़यालात मैने उनके वारे मे वनाये, वे भी अवतक वने है। कभी-कभी तो ये स्मृतियाँ इतनी स्पष्ट होती है कि मुझे दीखता है कि जैसे कल ही मै वहाँ था और कभी लगता था कि

जैसे हज़ार बरस वीत गये है और मै वूढा, वहुत वूढा हो गया हूँ। वक्त हमारा वड़ा अजीव और धोखे में डालनेवाला साथी है! लेकिन याद-दाश्त की चाले उससे भी अजीव है। पुरानी भूली वाते वरावर याद आती है, अनजानी दुनिया की झलक आती जाती है और मानव-जाति और स्वय मनुष्यता के आरम्भिक दिनों की धुँधली छाप पडती है। हम आदमी वहुत पुराने है और 'हव्वा' की वुलवुलो का तराना अव भी हमारे कानों में गूँज रहा है और जन्नत के सपनो से हम परेशान रहते है और युगो की दुखभरी कहानियाँ हमें दुखी वनाती है।

वार्सीलोना मे व उसके आसपास हमे वहुत-से लोग मिले, और वहुतों की साफ-साफ और जीती-जागती तस्वीरें अवतक मन पर वनी है। फिर भी हरेक आदमी का महत्त्व तो उस वडे दृश्य मे गायव हो गया, जो हमने वहाँ देखा। विद्रोह के शुरू के दिनों मे, जैसा कि हमने पढा और हमे वताया गया, सरकार और जनता विल्कुल तैयार नही थी। हर जगह वदअमनी फैली थी। दफ्तर वन्द थे। फौज, जैसी कुछ वह थी, विखर गयी थी। फिर भी इस वदअमनी के पीछे लोगो मे मुकाविला करने की भारी ख्वाहिश थी। विना हथियार लिये या फिर वुरी तरह हथियारवन्द होकर ये दुश्मन पर झपटे और जनरल फ्रेको के आसानी से फतहयाव होने के सपने को उन्होने तोड दिया और कई जगह उसकी फौजो को रोक दिया। वडी कोशिश के वाद मैड्रिड वचा लिया गया और उसकी वुर्जों पर दो वरस तक जनतन्त्र का झण्डा शान के साथ उडता रहा, हालाँकि उसकी सरहदो पर दुश्मन ने कावू कर लिया था और शहर पर करीव-करीव रोज़ ही वमवारी की जाती थी।

जवतक अच्छी फौज और गोला-वारूद न हो, तवतक रोक-थाम थोडी देर को ही हो सकती है। आदमी के साहस और सतोष की कीमत

बहुत होती हैं, लेकिन आजकल की लडाइयो मे आदमी योग्य फौजों और उनकी मशीनगनों, टेको और बमबारी की चालो का मुकाबिला नही कर सकते। इसलिए फ्रेंको की फौजे आगे बढती गयी। ज्यादातर उनमे मूर की, इटली और जर्मनी की टुकडियाँ थी और गोला-बारूद की उनकी ज़रूरत इटली और जर्मनी पूरी कर रहे थे। दो होशियार जर्मन और इटैलियन जनरल स्टाफ उन फौजो की बडी हलचलो को चला रहे थे। स्पेन की प्रजातन्त्र सरकार के सामने एक समस्या यह थी कि वह खास तौर से मुश्किल वक्त मे एक नयी फौज तैयार करे, जबकि यह मुसीबतो में लड रही थी और इग्लैण्ड और फ्रास की हस्त-क्षेप न करने की नीति से सतायी जारही थी। सरकारी दफ्तरो को उसे नये सिरे से व्यवस्था करनी पडी और फौज और आदमियो के लिए खाने और कपडे का भी बन्दोबस्त करना पडा।

अमन के वक्त भी यह एक बडी समस्या थी और जिन्दगी और मौत के सवाल के साथ वह आदमी की शक्ति से करीब-करीब बाहर दिखाई देती थी। पर प्रजातन्त्र के नेताओ ने उस समस्या को सुलझाने की कोशिश की और कठिनाइयो और नाउम्मीदो के बावजूद वे उस पर जमे ही रहे। अन्दरूनी झगडों ने उन्हें कमजोर कर दिया और उनकी प्रगति को रोक दिया। जब मै स्पेन गया तो मैंने दो साल की कोशिश का नतीजा देखा और वह मेरे लिए एक आश्चर्यजनक दृश्य था। पुरानी बदअमनी और हँसी के लायक हालत अब न रही थी और उसकी जगह चतुर सरकार व्यवस्थित तरीके से काम कर रही थी और एक शानदार फौज तैयार हो गयी थी।

मैं बहुत से सरकारी दफ्तरो मे गया और मन्त्रियों और महकमों के हाकिमों से मिला। बदकिस्मती से मै प्रधान-मन्त्री नैग्रिन से न मिल

सका, क्योकि जब मै वार्सीलोना में था, वह मैड्रिड गये हुए थे। इन दफ्तरो में व्यवस्थित रूप से काम चल रहा था जो कि कार्य-क्षमता का चिह्न है। कही भी सुस्ती या आलस दिखाई नही देता था और न काम में दौड-धूप होती जान पडती थी। लोग अपना-अपना काम चुपचाप खामोशी व जोश-खरोश के साथ कर रहे थे। अक्सर नये काम उन्हे करने पडते थे और उनका ढग पुराने सिविल नौकरो की बनिस्वत जो मशीन के ही पुर्जे बन गये थे, जुदा था और ज्यादा वेजाब्ता था। लेकिन वदलती परिस्थितियों मे तो ज़रूरत काम के अनुकूल अपने को बनाने की थी। सिविल नौकरो मे यह बात मुश्किल होती है, लेकिन वे लोग काम के साथ अपने को ठीक बिठा सकते थे। और उनके तजुर्बे मे जो-कुछ कमी थी वह उनके काम की तत्परता और काम कर डालने के सकल्प से पूरी हो जाती थी। चन्द रोज़ तक ही उनके हाल देखने के वाद और उनके वारे मे कुछ कहना मेरे लिए वेजा होगा। लेकिन मेरी राय यह बनी कि वहाँ आश्चर्यजनक कार्य-क्षमता थी और सहयोग था। झगडे भी रहे होंगे और असल में झगड़े और त्रुटियाँ थी भी, लेकिन सतह पर वे दिखाई नही देती थी।

खाने की समस्या गम्भीर थी। फौज थी जिसका पेट भरना था, और थी बडे शहरो की आबादी और फ्रैको के प्रदेश के बहुत से पनाहगीर। दूध और मक्खन कही देखने को नही मिलता था। मास, तरकारी और रोटी सबकी कमी थी। ऐसा हमने उस खाने से जाना जो सरकार के मेहमान होते हुए हमे वार्सीलोना के अच्छे-से-अच्छे होटल में मिला। नाश्ते में हमें एक प्याला काली कॉफी मिली और आधा रोटी का टुकडा। बस, और कुछ नही था। दोपहर के भोजन मे और नाश्ते में भी मामूली चीज़े व एक हरा शाक था। आलू तक नही मिलते थे।

ख़ास आदमियो के लिए जब यह बात थी, तो दूसरो का तो कहना ही क्या ? हमारे सम्मान में स्पेन की पार्लमेण्ट के प्रधान या स्पीकर ने भोज दिया। जल-पान मे मुख्यत दो तरह की मिस्सी रोटियाँ थी।

भले ही खाना कम था और कम होता जा रहा था, फिर भी फौज को भूखा नही रखा जा सकता था। उसकी माँग सबसे पहले पूरी की जाती थी। उसके बाद बच्चे थे, जिन्हे जितना दूध वहाँ मिल सकता था, दिया जाता था। पनाहगीरो मे बहुत-से बच्चे थे और सरकार ने उनके कुनबे बसा दिये थे। इनमें से एक कुनबे में हम गये। एक खूब-सूरत गाँव मे वह बसा हुआ था। उसीसे मिला हुआ एक बाग था। वहाँ हमने एक बगीचे के पास खुशनुमा जगह मे बच्चो को काम करते और खेलते हुए पाया। उनमे बहुत-से तो मुल्क के दूर-दूर के हिस्सो के अनाथ थे। उनके घर गिर गये थे और वे बरबाद हो गये थे। उस सबका डर उन बच्चो के मन मे बना था। लेकिन उनकी सरक्षिका अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह से समझती थी और बडी नर्मी और मुहब्बत के साथ उस कुनबे मे मेल-जोल का जीवन बिताने के लिए वह उन्हें तैयार करती थी। बच्चो को हर चीज के पीछे खूबसूरती दिखाने के लिए ज़रा-जरा-सी बात पर ध्यान दिया जाता था। कमरे सीधे-सादे थे, पर ऐसे तरीके से सजाये गये थे कि सजावट को देखकर खुशी होती थी और बिस्तर की चादर बच्चों को खुश करने के लिए होशियारी के साथ बनायी गयी थी।

बच्चो के कुनबों या घर के अलावा जहाँ बच्चे स्कूल-बोर्डिंग की तरह रहते थे, शहर के कुछ हिस्सो मे बच्चों के लिए भोजनालय भी थे। जो भी बच्चा वहाँ आ जाता, उसीको खाना मिलता। हमे बताया गया कि ऐसे भोजनालय आमतौर से म्युनिसिपैलिटी की मदद से किसी

संस्था या फौजी सिपाहियो द्वारा खोले गये है। इन या ऐसे ही सम्पर्को से नयी फौज जनता के वहुत समीप आ जाती थी। खुशकिस्मती से ऐसे ही एक वच्चो के भोजनालय के उद्घाटन के वक्त हम मौजूद थे। लिस्टर की फौज के एक हिस्से ने उसे वनवाया था और उस हिस्से के प्रतिनिधि अफसर और आदमी मय अपने वैंड के उस समारोह में हिस्सा लेने के लिए आये थे। सिपाही चाहते थे कि लोग उन्हें खाना दे और वदले में वे उनके वच्चो को खिलाने में मदद देना चाहते थे। इस भोजनालय में तीन हज़ार वच्चों को रोज़ाना खाना खिलाया जा सकता था।

यह भोजनालय देखने में वडा खूवसूरत था। दीवारो पर वडी अच्छी सजावट हो रही थी। नीली पोशाक मे और सफेद टोपी और लिवास सफाई के साथ पहने लड़कियो की कतारे आनेवाले मेहमानो और वच्चों का स्वागत कर रही थी। ये लडकियाँ अपनी मर्ज़ी से काम करने आयी थी और उनका काम हॉल मे वच्चो को खाना परोसना था। हॉल के भीतर और वाहर जोश से भरे वच्चो की भीड़ खड़ी थी। उनमें तेज़ी थी, उम्मीद थी।

इस समारोह से पहली रात को वार्सीलोना पर तीन मर्तवा हवाई हमले हुए थे और कुछ वम जहाँ आकर गिरे थे वह जगह वच्चो के उस भोजनालय से ज्यादा दूर नही थी कि जिसका उद्घाटन हम देख रहे थे।

३० जून, १९३९

३

वार्सीलोना से दूसरे दिन वडे तडके हम मोर्चे की तरफ चल दिये और शाम को वडी देर तक वहाँ रहे। दो घटे का रास्ता था और इजा-

जत का परवाना और एक स्पेनिश अफसर साथ होने की वजह से हम उन बहुत-से टिकट चैक किये जानेवाले ठिकानों मे कोई कठिनाई नही हुई, जिनसे आगे मामूली आवागमन नहीं हो सकता था। जिन-जिन गाँवों में होकर हम गुजरे, उनमें लड़ाई के चिह्न साफ दिखाई देते थे। लेकिन इन चिह्नों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण चीज उन गाँवों का वायुमण्डल था। चारो ओर ऐसी खामोशी छायी थी कि जैसी लड़ाई के मैदान में हुआ करती है। जीवन वहाँ अब भी है. लेकिन रोजमर्रा की तरह नहीं चल रहा था। लोग देखते थे कि कब वक्त-वक्त पर फूट पड़नेवाला दोजख का शोर फूट पड़े।

हम लोग लिस्टर के मुकाम पर गये। लिस्टर और मॉडेस्टो के बारे में हम बहुत-कुछ सुन चुके थे। वे दोनों फौजी अफसर मामूली जगहों से तेजी से ऊपर उठे और अब प्रजातन्त्र के सबसे अधिक विश्वासपात्र सेनापतियों मे से थे। मैड्रिड के बहादुर रक्षक जनरल मिआजा के बाद ही उनकी प्रसिद्धि और सर्वप्रियता दिखाई देती थी। मिआजा पुराने गार्ड का पेशेवर फौजी अफ़सर था और उस समय में जबकि फौज के अधिकाश भाग ने बग़ावत की थी, उसने प्रजातन्त्र का साथ नही छोडा था। लेकिन मॉडेस्टो और लिस्टर तो उस समय के सिविलियन थे। उनके पेशे भी फौजी नहीं थे। एक तो दर्जी था, दूसरा राजगीरी करता था। विद्रोहियो से लडने के लिए जब नयी फौज तैयार करने को आदमियों की माँग आयी, तो ये दोनों भर्ती हो गये और फौरन् ही उन्होने अपूर्व योग्यता दिखायी। एक-एक सीढी चढ़ते-चढ़ते वे सिपाहियों की पलटनों मे ऊपर उठे और दो बरस के अर्से में, जब कि मै स्पेन गया था, दोनों एक-एक लाख की फ़ौज के अफ़्सर थे और लडाई में उनकी जीतो का भी बड़ा शानदार रिकार्ड था।

मॉडेस्टो से हम मिलते-मिलते चूक गये और इसका हमें अफसोस हुआ। लेकिन लिस्टर से हम मिले और दोपहरी का ज्यादातर वक्त उसीके साथ खाना खाते विताया। सीधा-सादा खाना था। लिस्टर रोबीला आदमी है। चेहरा खुला और आकर्षक, उस लड़के की तरह जो जल्दी बढकर आदमी हो गया हो। लड़कपन और सयानपन का अजीव सगम था। गभीरता की जगह थी उसकी जिन्दा-दिली और दूसरो को भी हँसा देनेवाली हँसी। जिम्मेदारी उसके ऊपर वहुत थी और जो वोझ उसे उठाना पड रहा था, वह भारी था। आये दिन उसे मुश्किल हालतों का सामना करना पडता था और जहाँ कही खतरा ज्यादा-से-ज्यादा होता था या दुश्मन आगे वढ़ते आते होते थे, तो उसका मुकाविला करने के लिए झटपट उसे या मॉडेस्टो को ही ले जाया जाता था। फिर भी लिस्टर की खूवसूरती और चाल-ढाल में कोई अन्तर नही आया था और उसके तमाम ढग में आत्म-विश्वास और निश्चय की झलक थी। वह तो एक ऐसा वहादुर योद्धा था कि जो किसी भी वात से भयभीत होता नही दिखाई देता था और महान् सकट की परिस्थिति मे उसमें अपूर्व शक्ति ार आती थी।

नजदीक से मैंने उसे देखा क्योंकि मै देखना चाहता था कि लोकप्रिय फौज के ये नये अफसर कैसे है? पुराने फौजी आदमियो को तो हम जानते है, जो कट्टर अनुशासनप्रिय लोग है, चतुरता जिनकी सीमित होती है, जैसे रोजमर्रा के काम मे लगे, गुजरे जमाने में पडे हुए। नयी वातों से जिन्हे घृणा होती है, क्योंकि वे उनकी युद्ध की धारणाओं को ही वदल डालती है। पिछले महायुद्ध में ये लोग तो वहुत ही असफल सावित हुए। फिर भी उस तरह के लोग अब भी वहुत हद तक फौजो पर हुकूमत कर रहे है। हिन्दुस्तान में भी ऐसे वहुत से लोग है और

अक्सर उनकी पुरानी सीखे हमें मिला करती है। वह तो कितनी बार हमसे कह चुके है कि हिन्दुस्तानियो के हम-जैसे बनने में (हाँ, यदि वे उतनी शानदार ऊँचाई पर कभी पहुँच भी सके) और बडे-बडे अफसरों की जगह पाने मे तो पुश्ते लग जायेगी। अफसोस है इन पुराने फौजी आदमियो के लिए, जो पोलो और ब्रिज के खेल मे तथा परेड के मैदान मे इतने तेज दिखाई देते है, लेकिन आज के लिए वे गये-गुजरे हो गये है। अपना जमाना वे देख चुके और अब उन्हे यन्त्रकारो, इजिनियरो और विशुद्ध राजनैतिक विचारोवाले लोगों को जगह देनी पडी, जो मौजूदा अस्त्र-शस्त्रो की लडाई के तरीको की बारीकियो को समझते है। उन्हे अपनी जगह उन सिपाहियो को देनी होगी जिनकी अन्य मामूली सिपाहियों से अलहदा कोई ऊँची श्रेणी नही है। वह तो जनता की फौज का अफसर होगा। फौज के लिए जो अनुशासन जरूरी है, उसे वह कायम रखेगा, लेकिन फिर भी अपने मातहत फौज के साथ भाई-चारे का नाता रखेगा।

लिस्टर को मैंने इसी नये नमूने का पाया। उन्होने बहुत से अफसरो से मेरी मुलाकात करायी और अफसरो के ट्रेनिंग स्कूल में मुझे ले गये। हर जगह मुझे घरेलूपन और भाई चारे का वायुमण्डल मालूम हुआ। और वहाँ उन सबको जोडनेवाली मजबूत कडी थी वह ध्येय, जिसकी रक्षा करने का सकल्प वे कर चुके थे। फिर भी अनुशासन वहाँ था। इस स्कूल मे मैंने देखा कि अफसरों को राजनैतिक शिक्षा देने का खयाल रखा जाता है। अफसरो के स्कूल छोड देने और अपने पलटनो मे जा दाखिल होने पर भी इस राजनैतिक शिक्षा की तरफ से लापरवाही नही होती, क्योकि हरएक पलटन के साथ राजनैतिक कमिसर होता है, जिसकी राय किसी भी सवाल के राजनैतिक पहलुओ पर कमान्डर को हमेशा लेनी पडती थी। कमिसर का कर्त्तव्य होता था कि वह फौज मे दिलेरी बनाये रखे।

स्पेनिश जनतन्त्र की सबसे खास बातों मे एक बात थी दो बरस के अर्से मे एक बहुत ही अच्छी फौज का तैयार करना, जिसमे हज़ारों सुयोग्य अफसर थे। जनतन्त्र की अन्त में हार हुई, उसका कारण इस फौज की असफलता नही थी। भूख ने और इग्लैण्ड और फ्रांस की दगाबाज़ी ने उसका खात्मा किया। मिआज़ा जैसे अफसर को छोडकर पुराने अफसर बेभरोसे के और अयोग्य साबित हुए, जैसा कि चीन मे हुआ। बहुत-सी शिकस्ते तो इन पुराने अफसरो की वजह से हुई, लेकिन चूँकि नये तरीके के अफसरो की तादाद बढ गयी, इसलिए फौज मे मज़बूती आगयी। नये अफसरो मे एक बात की कमी थी। वह यह कि युद्ध-विद्या की उन्हे लम्बी ट्रेनिंग नही मिली थी। लडाई सीखने के उनके शिक्षालय तो अक्सर लडाई के मैदान ही थे। वही उन्होने बहुत-कुछ सीखा और तेजी से तरक्की की। लेकिन ऊँचे अफसरो के लिए लडाई का तख्ता पलट जाने और नयी हालतो के पैदा हो जाने की वजह से लोगो की भीड-की-भीड को जल्दी से सँभाल लेने का आदी हो जाना बहुत मुश्किल था। इस बात मे वे जर्मनी और इटली के सुरक्षित स्टाफ की बराबरी नही कर सकते थे, जो फ्रेंको की तरफ से लड रहे थे।

जनतन्त्र के रास्ते मे यह एक भारी अडचन थी, लेकिन बढते-बढते उसपर उसने विजय पायी और अफसरों की भीड मे से मॉडेस्टो और लिस्टर जैसे योग्य व्यक्ति सामने आये। ऊपर की रुकावट के विरुद्ध जनतन्त्र का लवाजमा कही ज़्यादा लायक था, और मध्यमश्रेणी के उसके अफसर बडे चतुर और तेज़ थे। अगर उन्हे काफी रसद और गोला-बारूद मिल जाते, तो इसमे सन्देह नही कि जनतन्त्र की नयी फौज फ्रेंको के पेशेवरो और विशेषज्ञो से जीत जाती, भले ही उनके पास जर्मनो और इटालियनो की फौजें और अस्त्र-शस्त्र और गोला-बारूद

बहुत ज्यादा होता।

इस नयी फौज और उसकी ट्रेनिंग से मै बडा प्रभावित हुआ। बाद में हमें अन्तर्राष्ट्रीय दल को देखने के लिए ले जाया गया, जिसने लडाई मे बहुत नाम पैदा किया था। शुरू में उसमें सब-के-सब विदेशी सैनिक ही थे, लेकिन जब मै वहाँ गया, तब उसमें ६० फीसदी स्पेनिश थे। जनतन्त्र की सरकार विदेशी सैनिको की भर्ती को रोक रही थी, क्योंकि उसका ध्येय यह बतलाना था कि वह स्पेन पर जर्मन, इटालियन, और मूर-जैसे विदेशियो के हमले की मुखालफत में लड रही है, उस घरेलू लडाई में नही कि जिसे विदेशी लोग महज मदद दे रहे है। लडाई के बारे मे बार्सीलोना में हमेशा यही कहा जाता था कि वह तो एक विदेशी हमला है, घरेलू लडाई नही है।

अन्तर्राष्ट्रीय दल का पता हमे आसानी से न मिल सका। यह एक अजीब बात थी कि पडोस में भारी फौज पडी होने पर भी वह दिखाई नही देती थी, और देहात करीब-करीब बियाबान-सा दीख पडता था। हाँ, कही-कही सिपाहियो या सतरियो की टोलियाँ दीख पडती थी, और एक फौजी लॉरी इधर-उधर दौड रही थी। इसकी वजह हवाई जहाज थे और बमबारी का डर ही इतना था कि सब सार्वजनिक कार्रवाइयों को छोड देना पडा था। इसलिए फौज की टुकडियाँ छिपी रहती थी, और छिपकर ही काम करती थी। उनकी तोपे पेडों की टहनियों से छिपा दी गयी थी। पहाडियो पर ढेर-की-ढेर तोपें लगी थी, लेकिन थोड़े से फासिले से वहाँ पेड और झाडियाँ ही दिखाई देती थी।

अन्तर्राष्ट्रीय दल बहुत बडे रकबे मे फैला हुआ था। उसके हरेक हिस्से को देखने का हमे वक्त नही था। हम अंग्रेजी और अमरीकन पल-टन मे गये और जब एक बार हमने उनका पता लगा लिया तो हमें पहा-

डियो पर और नीचे घाटी में बहुत-से सिपाही दिखाई दिये। वे वहाँ बहुत पुरानी हालतो में पडाव डाले हुए थे। मिट्टी और झाडियो से उन्होंने चदरोजा झोपडियाँ बना ली थी, या छोटी खाइयाँ खोद ली थी। आराम की तो वहाँ कुछ भी चीज नही थी, फिर भी वे इतने मस्त थे कि जैसे मैंने कही भी नही देखे। उनका उत्साह दूसरो को भी उत्साहित करने-वाला था। और उनके जोश और निश्चय को देखकर यह खयाल करना भी मुश्किल था कि जिस ध्येय के लिए ये लड रहे थे, वह पूरा न होगा।

उनमे से बहुत से सिपाहियो से हमने बातचीत की। अपनी इच्छा से वे दूर जगहो से आ गये थे। उन्हे उस ध्येय के लिए जान जुटाने की कोशिश खीच लायी थी कि जिससे हरेक युग मे स्त्री-पुरुषो को प्रेरणा मिली है। अपने घरबार, काम-काज और आरामो को उन्होने छोड दिया था और अपनी पसद से उन्होने खतरे से भरी मुश्किल की जिन्दगी को हर वक्त की अपनी साथिन बनाया था। मौत तो उनकी अक्सर आने-वाली महमान थी। उन्हे हँसते और खेलते देखकर मुझे लडाई के पिछले दो बरसो की याद आयी। बदकिस्मती और बरबादी के खौफनाक बरसो का इस दल का शानदार रिकार्ड भी मेरे सामने आया। न जाने कितनी बार उन्होने जनतत्र को बचाया, और उनमे से हजारो स्पेन की जमीन मे सो रहे है। मैंने जितने खुश-दिल युवको को देखा, उनमे से कितने ऐसे होंगे जो कभी अपने घर न लौट सकेगे, और उनके कुटुम्बी बेकार उनकी राह देखते रहेगे?

कुछ ही दिन बाद मैंने देखा कि वे फिर लडाई के मैदान मे आगये थे, और उसके कुछ ही अर्से बाद फ्रैको की फौजो को रोकने के लिए उन्हे ईब्रो दौड आना पडा। उनमे से बहुत-से तो हमेशा के लिए वही रह गये। मुझे याद है कि उनमे से कई एक ने मेरे हस्ताक्षर लिये थे।

मर्जी न होते हुए भी मुझे अन्तर्राष्ट्रीय दल के इन बहादुर आदमियों के पास से चला आना पडा। मन में कुछ ऐसा था जो मुझे उस वीरान दीखनेवाले पहाडी देश में ठहरने को प्रेरित कर रहा था, जिसने इतने मनुष्योचित साहस और जीवन की इतनी अमूल्य चीज को आश्रय दिया। एक स्पेनिश दल के स्थान पर हमे ले जाया गया। मेरे खयाल से वह स्थान मॉडेस्टो का था, हालाँकि मॉडेस्टो उस समय वहाँ पर नही था। हमारे सम्मान मे सब अफसर इकट्ठे हो गये थे, और हमने मिलकर खाना खाया। उस आनन्ददायक गोष्ठी में यह याद रखना मुश्किल था कि लडाई का मैदान वहाँ से दूर नही है, और कोई भी अनिष्ट बम हमारी शान्ति को भग कर सकता है। एक स्पेनिश अफसर के सुन्दर भाषण के बाद हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान की आजादी के लिए शुभ-कामनाएँ की गयीं। थोडे से शब्दो मे धन्यवाद देते हुए मैंने उनका जवाब दिया और जनतत्र और उसकी अच्छी फौज के प्रति मैंने अपनी सद्भावना प्रकट की।

और फिर बार्सीलोना की तारो की रोशनी मे वापिस लौट आया।

७ जुलाई, १९३९

४

जो खास-खास लोग स्पेन मे हमे मिले, लिस्टर उनमे से एक था। दूसरा आदमी था सीनर डेल वेयो जो उस वक्त प्रजातन्त्र का विदेशी मंत्री था। बार्सीलोना पहुँचते ही हम उससे मिलने गये। बाद में भी कई मौको पर हम उससे मिले। आमतौर पर कूटनीतिज्ञ जैसे एकान्त-प्रिय और सुशील हुआ करते है और कोई भी बात निश्चित रूप से कहने में घबराते है, और जिन्हे कूटनीति की चालो की लम्बी ट्रेनिंग मिली

होती है, वैसा वेयो नही था। वह तो एक पत्रकार और लेखक था। क्राति ने उसे सार्वजनिक जीवन में आगे ला दिया था। अव भी उसमें पत्रकारपन कुछ मौजूद था। योग्यता उसकी असदिग्ध थी; लेकिन उसके जिस गुण का असर मुझपर वहुत ज्यादा पड़ा, वह उसकी जीवट और उसका सकल्प था। मैड्रिड, वार्सीलोना और जैनेवा में उसने प्रजातन्त्र की तरफ से सभी मुश्किलो का मुकावला किया, और 'अ-हस्तक्षेप' की पेचीदा चालवाजियो पर हावी होने की कोशिश की। मार्च १९३८ के सकट के दिनो में और जव १९३८ की गर्मियों मे ईब्रो की लम्वी खिचती जाती लडाई जारी थी, तव वह प्रजातन्त्र के आदमियो के लिए आश्रयस्थान और प्रकाश-स्तम्भ वना।

प्रधान-मन्त्री डा० नैग्रिन के वाद वह सरकार का मुख्य व्यक्ति था। भारी-से-भारी वरवादी होने और वदकिस्मती सामने आने पर इन दोनो में से किसीके हाथ-पैर कभी नही फूले और न कभी हिम्मत ही छोडी। किसी राष्ट्र के अध्यक्ष ने इतनी वडी दिलेरी कभी नही वतलायी होगी जितनी डा० नैग्रिन ने कि जो उस समय जव कि ईब्रो पर जोरों का हमला हो रहा था, जूरिक में वैज्ञानिको की एक काग्रेस में शामिल होने चले गये।

डेल वेयो और मुझमें वहुत देर तक वातचीत होती रही। उसने विना किसी छिपाव के स्पेन की स्थिति समझायी और अपनी कठिनाइयों की न तो अवगणना की, न उन्हे कम ही वतलाया। नयी फ़ौज ने जो प्रगति की, उससे लड़ाई के खयाल से वह सन्तुष्ट था, लेकिन स्टाफ का काम अच्छा नही था। उनके वहुत-सी शिकस्ते पाने और पीछे हटने का कारण दुश्मनो का वमवारी के साधनों, हथियारों, वड़ी-वड़ी तोपो के अलावा यह भी था कि प्रजातत्र के सेनापतियो को वड़ी लड़ाइयों का

तजुर्बा न था और कभी-कभी प्रजातन्त्र के रखे हुए पुराने अफसर भी जानबूझकर काम बिगाड देते थे । यह काम बिगाडना नातजुर्बेकारी से भी ज्यादा हानिकारक था । लेकिन ज्यो-ज्यो फौज के अफसर धीरे-धीरे इन अविश्वसनीय अफसरो की जगह लेते जाते थे, त्यो-त्यो वह हानि कम-से-कम होती जा रही थी । नये अनुभवहीन आदमियो का रखा जाना एक महँगे का सौदा था, लेकिन अनुभव तो वहाँ लडाई के मैदान मे प्राप्त किया जा रहा था और गलतियाँ भी उसमें कम ही होती थी । फौज की योग्यता रोज़-ब-रोज़ बढती जाती थी, और इस खयाल से प्रजातन्त्र के लिए अधिक वक्त निकल जाना फायदेमन्द था ।

मेरे स्पेन मे जाने के कुछ ही हफ्तो बाद फ्रेको की फौजो ने जर्मन और इटेलियन मित्र-राष्ट्रो का पूरा सहयोग लेकर ईब्रो पर भयकर हमला किया । ईब्रो की यह लडाई कई हफ्ते तक चलती रही । और वह मौजूदा समय की खास लडाइयो मे से एक थी । लेकिन आज हमारे मापदण्ड बडे हो गये है और यह लडाई मामूली लडाई की एक छोटी-सी घटना भर रह गयी है । इस लड़ाई मे प्रजातन्त्र की फौज ने अपना पूरी तरह से औचित्य दिखाया और फ्रेको की फौज से अपने को अधिक योग्य साबित किया । हवाई लडाई के साधनो और गोला-बारूद की कमी होते हुए भी उसने हवाई जहाजो और भारी फौज के हमलो को बार-बार रोका ।

डेल वेयो को फौज के बारे में कोई फिक्र नही थी । उसकी परेशानी तो यह थी कि गोला-बारूद कहाँसे आये ? और उससे भी ज्यादा फिक्र थी उसे रसद की । आगे आनेवाला जाडा रसद के लिए एक बडी मुश्किल का वक्त था । रसद और गोला-बारूद का मिलना ज्यादातर इग्लैण्ड और फ्रास की नीति पर निर्भर था और इन दोनो देशो की सरकारे बरा-

वर 'अहस्तक्षेप' के नाम पर प्रजातन्त्र का गला घोंटने और छिपे छिपे फ्रेंको को ही मदद देने की नीति पर उतारू थे।

म्यूनिक और उसके तमाम पुछल्ले तो अव आने को थे और हमारी विवेक-वुद्धि वार-वार के धोखे और झूठ से उस वक्त तक जड नही हो पायी थी। लेकिन इस 'अहस्तक्षेप' का तमाशा तो एक अचम्भे में डाल देने की चीज़ थी और उसने ज़ाहिर किया कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलो के मापदण्ड और साधन कितने खराव है! स्पेन के इस अहस्तक्षेप ने ही म्यूनिक को जन्म दिया।

डेल वेयो ने मेरे सामने फ्रेंको के वारे मे एक भी कड़ा शब्द नही कहा। उसने वस इतना कहकर छोड दिया कि उसके मुल्क के असली दुश्मन और आक्रमणकारी तो नात्सी और फासिस्ट लोग है। फ्रेंको उनके हाथ की कठपुतली है। जर्मनी और इटली तक के वारे मे भी उसमें कोई कटुता नही थी। लेकिन उसमे उस वक्त कटुता की कमी नही रही, जव उसने ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारो की वात की कि जो मित्रता के वुर्के में प्रजातन्त्रीय स्पेन को खत्म कर डालने को इतना सव कर रही थी। खास तौर से मि० चेम्वरलेन की सरकार के तो वह वेहद खिलाफ था; क्योकि उसका खयाल था कि फ्रेंच सरकार तो एकदम डार्उनिग स्ट्रीट के तावे है।

डेल वेयो ने मुझसे कहा कि चाहे यह खुले आम तो वह नही कह सकता था, पर उसे और उसकी सरकार को यह समझने पर विवश होना पडा कि ब्रिटिश सरकार दुश्मन है और दुश्मन को मदद दे रही है। हमारी इस वातचीत के कुछ ही दिन वाद फ्रेंच सरकार ने ब्रिटिश सरकार के कहने पर पिरेनीज़ सरहद को रोक दिया। मुसोलिनी को संतुष्ट करने के इरादे से यह एक वडी वुरी करतूत थी। इससे प्रजातत्र के

ध्येय को जितनी हानि पहुँची, उतनी उन लडाइयों से भी नही हुई, जिनमे फ्रेंको जीता था।

हम दोनो ने भारत के बारे मे भी बातचीत की और मैंने अपना राष्ट्रीय झण्डा उसे भेट किया। कई महीने बाद, सितम्बर के उस पिछले भाग्य-निर्णायक सप्ताह मे कि जब मि० चेम्बरलेन और उनका छाता 'सन्तुष्ट करने की नीति' को हवाई जहाज से गोडेसबर्ग ले जा रहे थे, मैं डेल वेयो से जिनेवा में मिला। रसद की समस्या बडी गम्भीर होती जा रही थी। उसने मुझसे प्रार्थना की कि हिन्दुस्तान से खाद्य-सामग्री भिजवाकर मैं उनका मदद करूँ। उसके अन्तिम दर्शन मुझे आधी रात के वक्त जिनेवा के मशहूर कॉफी-हाउस मे हुए, जहाँ राजनीतिज्ञ और पत्रकार ताज़ा खबरो और राजनीति में फैली बदनामी की चर्चा करने के लिए इकट्ठे हुए थे। उन्हे काफी मसाला मिल जाता था, क्योंकि मैक्यावेली के जमाने की स्पष्ट चालबाज़ियो को अँधेरे मे डाल देने के लिए 'सन्तुष्ट करने की नीति' का अवतार हुआ था।

तीसरी आकर्षक व्यक्ति जो मुझे स्पेन मे मिली डोलोरीज़ थी। वह पैशनेरिया के नाम से मशहूर थी। उसके बारे मे अक्सर मैंने बहुत-कुछ सुना था और उससे मिलने के लिए मैं उत्सुक था। वह कुछ अस्वस्थ थी, हम उसके छोटे-से घर पर गये। कोई एक घण्टे हम उसके साथ रहे और एक दुभाषिये की मारफत हम लोगों ने बातचीत की। उसकी असाधारण जीवट ने मुझे चकित कर दिया और और मैंने अनुभव किया कि वह उन बहुत ही खास औरतो मे से एक है, जो मुझे वहाँ मिली थी।

वह बास्क देश के एक सुरगसाज़ की बेटी थी, अधेड उम्र की, सीधीसादी दिखनेवाली और सयाने-सयाने बच्चो की माँ! चेहरा उसका सुन्दर और खुशगवार था, जैसे एक खुश नर्स का होता है। उसपर

मुस्कराहट थी और फिर भी उस सबके पीछे अपने वर्ग और राष्ट्र के लिए असीम वेदना छिपी हुई थी। आराम के वक्त मे उसका चेहरा शात था। लेकिन सतह के नीचे की हलचल की रेखा उसपर झलकती थी। जब वह बोलने को मुँह खोलती तो जोशीले शब्द उसके मुँह से निकलने लगते थे, एक शब्द के ऊपर दूसरा शब्द टूट पडता हुआ। अन्दर की ज्वाला से उसका चेहरा दमक उठता था और उसकी खूबसूरत आँखे ऐसी चमक उठती थी कि आदमी को लुभा ले। एक छोटे-से कमरे में मैने उसकी बात सुनी और स्पेनिश भाषा में जो कुछ कह रही थी, उसका कुछ हिस्सा ही मै समझ पाया। लेकिन उसकी भाषा की सगीत-मय ध्वनि मझे बहुत पसन्द आयी और उसके चेहरे और आँखो के हाव-भाव भी अर्थपूर्ण थे। तब मै समझा कि स्पेन की जनता पर उसका कितना असर है। मै नही कह सकता कि मुझ-जैसे आदमी पर, कि जिस-पर किसीका असर आसानी से पड नही पाता, जब उसने इतना असर डाल दिया, तो अपने देश के लोगों पर तो न जाने उसका कितना असर पडता होगा ?

कोई एकाध महीने बाद मै पैशनेरिया से पेरिस मे मिला और देखा कि वह एक बडी सभा में भाषण दे रही है। वह स्पेन की भाषा में बोल रही थी और लोग वहाँ ज्यादातर फ्रांस के थे, इसलिए वे उसकी बात आसानी से नही समझ सकते थे। लेकिन उस भारी भीड़ को उसने स्तब्ध रखा। ऐसा थोडे ही अच्छे बोलनेवाले कर सकते है। और जब मीटिंग खत्म हुई, तो औरतो पर औरते, लडकियो पर लडकियाँ और कभी-कभी आदमी, अपने हाथो में उसके लिए फूल या स्पेन देश के लिए भेंट ले-लेकर पास आने लगे। उनकी आँसूभरी आँखो मे उसके लिए प्रेम भरा था और जब वह उन्हे छाती से चिपटाती थी या कहती

थी कि तुम खुश रहो, तो वे अक्सर रो पड़ती थी। वह वहाँ स्पेन के दुख और दुर्जय आत्मा की मूर्ति बनी खडी थी। लेकिन वह एक राष्ट्र-भर के प्रतीक होने से भी कुछ और ज्यादा थी। वह उन असंख्य प्राणियों के लिए उनके जीवन की पीड़ा का और उसका अन्त करने की प्रेरणा और आशा की मूर्ति थी। वह प्रत्येक सामान्य स्त्री-पुरुष की प्रतीक थी कि जो युग-युग से दुख उठाते और शोषित होते आ रहे हैं और जो अब स्वतन्त्र होने पर कटिबद्ध थे।